विजय नगर साम्राज्य की गौरव गाथा

सम्राट कृष्णदेवराय

डा. शिवकुमार अस्थाना

विजयनगर साम्राज्य की गौरव-गाथा

– डॉ. शिवकुमार अस्थाना

प्रकाशक :
लोकहित प्रकाशन
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ–२२६००४

मुद्रक :
नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ–२२६००४

प्रथम संस्करण
वर्ष प्रतिपदा, संवत् २०५८
२६ मार्च, २००१

मूल्य : रु. १४.००

अनुक्रमणिका

आमुख

सन् १९६४ में, श्री गुणवंतराय आचार्य द्वारा लिखित तथा मे० वोरा एण्ड कं०, बम्बई द्वारा प्रकाशित, विजयनगर साम्राज्य के बारे में तीन उपन्यासों की एक शृंखला पढ़ने को मिली थी। उक्त पुस्तकें पढ़कर दक्षिण भारत के इस महान् गौरवशाली हिन्दू साम्राज्य के बारे में जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उससे अपने प्राचीन वैभव के बारे में बड़ा गर्व अनुभव हुआ और मन में एक अजीब-सा हर्षातिरेक उत्पन्न हुआ। बात आयी गयी हो गयी। पिछले वर्ष सूचना विभाग के पुस्तक बिक्री केन्द्र में पुनः विजयनगर के बारे में एक अंग्रेजी पुस्तक दिखी- 'विजयनगर'- संपादन वसुंधरा फिलिओजैट। वह पुस्तक मैं क्रय करके ले आया। पुस्तक पढ़कर बहुत आनन्द आया। विजयनगर के गौरवशाली इतिहास को और अधिक विस्तार से जानने की इच्छा हुई। लखनऊ के सारे पुस्तकालय छान मारे, पर विजयनगर के बारे में कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं हुई। विधानसभा पुस्तकालय में गुणवंतराय आचार्य का 'महामात्य' उपन्यास मिला, पर वह भी, वह नहीं था, जो मैंने पहले पढ़ा था।

इन्हीं दिनों मेरी पहली पुस्तक "भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य" पूरी हो गयी और उसकी पाण्डुलिपि, लोकहित प्रकाशन के प्रमुख, मा० अनन्तराव गोखले को सौंपने गया तो अगली पुस्तक मैं कौन सी लिखूँ, इसकी चर्चा चल पड़ी। उन्होंने विजयनगर साम्राज्य का नाम सुझाया। मैंने स्वीकृति दे दी। उन्होंने सहायतार्थ मुझे तीन पुस्तकें भी दीं। अगले दिन से अध्ययन और लेखन प्रारम्भ हो गया और परिणामस्वरूप यह पुस्तक "विजयनगर साम्राज्य की गौरवगाथा" आपके हाथों में है।

"निज कवित्तु केहि लाग न नीका" के सिद्धांतानुसार मुझे संतोष हो जाना तो स्वाभाविक है, किन्तु पर्याप्त नहीं। मुझे इस कृति में कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय तो सुधी पाठक ही करेंगे। यह पुस्तक उन तमाम युवक और युवतियों को समर्पित है, जो अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति को सही रूप में जानने की इच्छा रखते हैं तथा उस पर गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

डॉ० शिवकुमार अस्थाना
१२-बी, दारुलशफा, लखनऊ- १

फाल्गुन पूर्णिमा, सं. २०५७ वि०
(होलिकोत्सव पर्व)

भूमिका

विजयनगर साम्राज्य (जिसे कुछ इतिहासकारों ने कर्नाटक साम्राज्य की संज्ञा दी है) की गौरवगाथा लिखने से पूर्व मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि विजयनगर के उस महान् हिन्दू साम्राज्य, जिसका विस्तार उत्तर में कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक तथा पश्चिम में सिन्धु सागर से लेकर पूर्व में गंगा सागर (बंगाल की खाड़ी) तक के समस्त भू-भाग तक था और जिसमें वर्त्तमान् उड़ीसा, कर्नाटक, आन्ध्र, तमिलनाडु तथा केरल प्रदेशों का समावेश था एवं जो लगभग २३० वर्ष तक (१३३६ से १५६५ तक) अस्तित्व में रहा, जो विदेशी राजदूतों और पर्यटकों के अनुसार उस समय का विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली, वैभवशाली और सम्पन्न साम्राज्य था, जिससे दिल्ली के शासक भी भयभीत रहते थे और इस कारण उन्होंने उसकी ओर शताब्दियों तक आँख उठाकर देखने का भी साहस नहीं किया, जिससे बहमनी राज्य और बाद में उसके ५ खण्ड राज्यों- अहमदनगर, बीदर, बरार, गोलकुण्डा और बीजापुर ने सदा मुँह की खायी तथा जो अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए, जिस हिन्दू साम्राज्य से सदा सहायता की याचना करते रहते थे, उस वैभवशाली, ऐश्वर्यशाली और सभी प्रकार से समुन्नत साम्राज्य का भारतीय इतिहासकारों द्वारा उचित, सही तथा विस्तृत विवरण न किया जाना उनके माथे पर एक कभी न मिट सकने वाला काला धब्बा और कलंक है।

विजयनगर साम्राज्य के शासकों के शासनकाल में संस्कृति, कला, साहित्य, विज्ञान, हिन्दू धर्म तथा वास्तु-शिल्प निर्माण-कला की जो उन्नति हुई, वह अभूतपूर्व थी। यदि यह कहा जाये कि, मुस्लिम शासन के अभिशाप काल में, विजयनगर साम्राज्य के कारण ही २५० वर्ष तक हिन्दू धर्म की रक्षा हो सकी तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कर्नाटकी संगीत ने इसी काल में जन्म लिया। दक्षिण के मन्दिरों की स्थापत्य कला का जन्म भी इसी काल में हुआ। माधव और सायण द्वारा लिखे गये वेदों पर भाष्य और अन्य धार्मिक ग्रंथ उस समय के धर्म और साहित्य के चर्मोत्कर्ष के पुष्ट प्रमाण हैं।

साम्राज्य के वैभव और श्रेष्ठता की सुगन्ध सारे विश्व में फैली और उसने सुदूर फ्रांस, स्पेन, इटली, पुर्तगाल, परशिया, तुर्की, रूस, चीन आदि देशों के अनेक पर्यटकों एवं यात्रियों को विजयनगर आने के लिए आकर्षित किया।

इनमें से अधिकांश ने विजयनगर के बारे में अपने आलेख छोड़े। आज यही आलेख विजयनगर साम्राज्य के इतिहास वहाँ के निवासियों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, परम्पराओं, उत्सव, युद्ध-कौशल आदि के बारे में जानकारी देने के महत्त्वपूर्ण सूत्र और प्रमाण सिद्ध हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त विजयनगर साम्राज्य के बारे में अन्य कोई प्रामाणिक क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। स्थान-स्थान पर लगभग ५०० पत्थर, ताँबे, चाँदी तथा सोने की पट्टिकाएँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनसे वहाँ के इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है। "विजयनगर साम्राज्य की गौरवगाथा" नाम की इस पुस्तक को पढ़ने से पूर्व उस समय की देश और दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति को समझना भी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उसको समझे बिना विजयनगर साम्राज्य के निर्माण का कारण समझ में नहीं आ सकता। हमें तत्कालीन दक्षिण भारत की राजनीति की स्थिति को समझने के लिए भारत में मुसलमानों का आक्रमण, विजय और दिल्ली में उनके शासन का इतिहास तथा विवरण भी जानना पड़ेगा।

KASHMIR
Indus
R. Jehlam
R. Chenab
R. Ravi
R. Sutlej
Panipat
Delhi
R. Ganges
RAJPUTANA
Agra
R. Gogra
R. Gumti
R. Chambal
R. Luni
BUNDELKHAND
R. Ganges
BENGAL
R. Narbada
R. Tapti
KHANDESH
BERAR
GONDWANA
AHMADNAGAR
BIDAR
R. Bhima
GOLCONDA
BIJAPUR
R. Kistna
ABIAN
SEA
BAY OF
BENGAL
VIJAYA
NAGAR
Cauvery
R. Vaigai
India in 1526 A. D.
English Miles
0
50
100
200
300
400
70
75
80
85
90
35
30
25
20
15

प्रथम अध्याय

भारत में मुस्लिम शासन का सूत्रपात

भारत पर मुस्लिम आक्रमण और दिल्ली के सुल्तान

सन् ११९० में गोर के सुल्तान मोहम्मद ग़ोरी ने दिल्ली पर प्रथम बार चढ़ाई की और घायल होकर बुरी तरह पराजित हुआ। दो वर्षों में उसने, कहते हैं, दिल्ली पर १६ बार आक्रमण किया। हर बार ग़ोरी पराजित हुआ परन्तु पृथ्वीराज चौहान ने उसे हर बार क्षमा करके वापस जाने दिया। पुनः सन् ११९२ में दिल्ली पर १७वीं बार आक्रमण कर मोहम्मद ग़ोरी ने पृथ्वीराज चौहान को पराजित किया और उस घायल महारथी को पकड़कर उसकी आँखें फोड़ दीं तथा उसको अपने साथ ग़ोर ले गया। वहाँ पृथ्वीराज चौहान ने अपने मित्र चन्द्रबरदायी की सहायता से शब्दभेदी बाण के द्वारा मोहम्मद ग़ोरी की हत्या कर दी। बाद में दोनों मित्रों ने एक दूसरे का सिर काटकर आत्महत्या कर ली। मोहम्मद ग़ोरी वापस जाते समय कुतुबुद्दीन ऐबक़ को दिल्ली का शासन सौंप गया था। कुतुबुद्दीन ऐबक़ ने सन् १२१० तक शासन किया और उसने उत्तरी भारत के सभी छोटे-छोटे राज्यों को, राजस्थान से बंगाल तक, जीत लिया। ऐबक़ एक कट्टर मुस्लिम शासक था। उसने हिन्दुओं पर नृशंस अत्याचार किये।

गुलाम वंश

सन् १२१० में घोड़े से गिरकर कुतुबुद्दीन ऐबक़ की मृत्यु हो गयी। कुछ माह सुल्तान आरामशाह ने दिल्ली का शासन किया, पर अल्तमश ने उसकी हत्या कर दिल्ली की गद्दी हथिया ली। अल्तमश के बाद सन् १२३६ में उसकी बेटी रजिया सुल्ताना गद्दी पर बैठी। अमीरों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया और

१२४० ई० में उसको बन्दी बना, उसके छोटे भाई बहरामशाह को गद्दी पर बैठाया। सन् १२४६ ई० तक उसने शासन किया। १२४६ ई० में प्रधानमंत्री, नासिरुद्दीन बलबन, ने सत्ता हथिया ली। बलबन ने १२८६ ई० तक शासन किया और इसका शासनकाल बहुत अच्छा माना जाता है। उसने सभी विद्रोहों को दबाकर लाहौर से बंगाल तक एकछत्र राज्य स्थापित किया। १२८७ ई० में बलबन की मृत्यु हो जाने के बाद कैकुबाद को गद्दी पर बैठाया गया। कैकुबाद ने केवल ३ वर्ष शासन किया और वह एक कमजोर शासक सिद्ध हुआ।

खिलजी वंश

सन् १२९० में कैकुबाद को अपदस्थ कर जलालुद्दीन खिलजी ने सत्ता हथिया ली और उसने सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह के नाम से शासन किया। जलालुद्दीन खिलजी ने कट्टर मुस्लिमों की तरह हिन्दू शासकों पर आक्रमण कर नृशंस अत्याचार किये। १२९० में उसने राजस्थान के कई स्वतन्त्र हिन्दू राज्यों तथा रणथम्भौर को भी जीत लिया।

दक्षिण भारत पर मुसलमानों का प्रथम आक्रमण

सन् १२९२ में जलालुद्दीन खिलजी ने अपने भतीजे, कड़ा-मानिकपुर के सूबेदार, अलाउद्दीन खिलजी को मालवा पर आक्रमण करने को भेजा। मालवा की पराजय हुई और वहाँ अलाउद्दीन को पता लगा कि दक्षिण में देवगिरि एक अत्यन्त धनी व सम्पन्न राज्य है। उसने १२९४ में मालवा से देवगिरि पहुँचकर वहाँ के राजा रामचन्द्रदेव पर अपनी विशाल सेना से भयंकर आक्रमण किया। देवगिरि का आक्रमण, मुस्लिमों का दक्षिण भारत पर प्रथम आक्रमण था। देवगिरि के राजा रामचन्द्र देव की पराजय हुई और वहाँ से अलाउद्दीन अपने साथ हजारों पौण्ड सोना, चाँदी, मोती और हीरे-जवाहरात ले गया। इसके अतिरिक्त रेशम के एक हजार थान भी वह साथ ले जाने से नहीं चूका।

इस आक्रमण का प्रतिकार न किया जाना दक्षिण भारत के स्वतन्त्र हिन्दू राज्यों के माथे पर बहुत बड़ा कलंक था और बाद में उन्हें उसका परिणाम भुगतना पड़ा। इस आक्रमण के समय रामदेव द्वारा सहायता की याचना किये जाने पर भी, किसी राजा ने उसकी सहायता के लिए अपनी सेना नहीं भेजी। यदि उस समय अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण का सामूहिक प्रतिकार कर

दिया जाता तो दक्षिण भारत मुसलमानों की दासता कभी नहीं झेलता। वहाँ से अलाउद्दीन कड़ामानिकपुर वापस चला गया। अलाउद्दीन का भाई उलूग खाँ जलालुद्दीन खाँ को यह कहकर, बहकाकर कड़ा ले गया कि अलाउद्दीन आपसे डरता है, क्योंकि वह बिना आपकी आज्ञा के देवगिरि पर आक्रमण करने चला गया था। जलालुद्दीन अपने भतीजे के अन्धे प्रेम में सराबोर, निहत्था, अपनी सेना गंगा के इस पार छोड़कर नाव पर अलाउद्दीन से मिलने चला। अलाउद्दीन के इशारे पर, १९ जुलाई, १२९६ को, उसके साथियों ने जलालुद्दीन की हत्या कर दी और अलाउद्दीन खिलजी ने अपने को दिल्ली का सुल्तान घोषित कर दिया। वर्ष के अन्त में वह दिल्ली पहुँचा और उसने वहाँ बाकायदा अपना राज्याभिषेक कराया। उसने अपने सरदारों का मुँह, अपार सम्पत्ति और भेंट देकर, बन्द कर दिया। देवगिरि से लाये हुए लूट का बहुत बड़ा भाग सरदारों में बाँट दिया और उनको सम्मानजनक पदवियों तथा जागीरों से विभूषित कर सदा-सदा के लिए उनको अपना पक्षधर बना लिया।

सन् १२९८ में अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर चढ़ाई की। वहाँ का राजा पराजित होकर अपनी कन्या देवलदेवी के साथ भाग निकला और उसने देवगिरि जाकर शरण ली। उसने वहाँ रामदेवराय यादव के सुपुत्र शंकरदेव राय के साथ देवलदेवी का विवाह कर दिया। रानी कमलादेवी मुसलमानों द्वारा पकड़ ली गयीं और वे उसे अपने साथ दिल्ली ले गये। वहाँ पहुँचने पर अलाउद्दीन खिलजी ने कमला देवी से निकाह कर लिया। खिलजी ने सोमनाथ के मन्दिर को बुरी तरह लूटा, फिर उसे गिरवा दिया। मन्दिर की मूर्त्ति को अलाउद्दीन अपने साथ ले गया और उसे अपने सिंहासन की सीढ़ी बनाया। गुजरात से वह एक सुन्दर नौजवान दास को भी उसके मालिक से छीनकर ले गया। यह नौजवान ही आगे चलकर उसका सेनापति, मलिक काफूर बना।

दक्षिण भारत पर पुनः आक्रमण

सन् १३०७ में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने सेनापति मलिक काफूर को देवगिरि पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। रामदेवराय यादव की पराजय हुई और लूट के माल के साथ मलिक काफूर गुजरात की पूर्व राजकुमारी और रामदेवराय यादव के पुत्र, शंकरदेव राय की पत्नी देवलदेवी को भी बन्दी बनाकर दिल्ली ले

गया। कहते हैं कि उसकी कुलटा माँ कमला देवी ने देवलदेवी को पकड़कर दिल्ली लाने का आदेश दिया था। दिल्ली में देवलदेवी का अलाउद्दीन के बड़े बेटे ख़िज्र खाँ के साथ जबरदस्ती निकाह कर दिया गया।

१८ नवम्बर, सन् १३१० को अलाउद्दीन ने मलिक काफूर को भेजकर पुनः देवगिरि पर चढ़ाई की तथा उसकी विजय के पश्चात् मलिक काफूर ने वारंगल पर चढ़ाई कर वहाँ के काकतीय नरेश, राजा प्रताप रुद्रदेव को हराया। मैसूर के होयसल-वंशी राजा बल्लाल चतुर्थ को पराजित किया और उसे बन्दी बनाकर दिल्ली भेजा (जिसे सन् १३१३ में मुक्त किया गया), १४ अप्रैल, १३११ को मदुरा के पांड्य नरेश को भी पराजित कर उसने सारे दक्षिण भारत पर अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया। मदुरा के प्रसिद्ध मीनाक्षी देवी के मन्दिर की मूर्त्ति को तोड़कर फेंक दिया गया। मलिक काफूर ने विजय स्मारक के रूप में पश्चिमी तट पर मालाबार में एक विशाल मस्जिद का निर्माण कराया। पश्चिम का सम्पूर्ण कोरोमंडल तट (क्विलोन से कन्याकुमारी तक) जो कभी पांड्य राज्य के शासन के अंग थे, अब उसके अधिकार में थे।

१८ अक्टूबर, १३११ को वह दिल्ली वापस लौटा। इस अभियान में उसने दक्षिण भारत के सारे मन्दिर एवं मूर्त्तियाँ नष्ट कर दीं। सन् १३१३ ई० की इस महान् विजय के पश्चात् मलिक काफूर अपने साथ लूट के माल के नाते ६१२ हाथी, २०,००० घोड़े, ९६,००० मन सोना और सैकड़ों मन हीरे-जवाहरात और मोती ले गया। [ADVANCED HISTORY OF INDIA-R.C. MAJUMDAR]

मलिक काफूर के दिल्ली लौटते ही देवगिरि के शंकरदेव राय यादव ने १३१२ में अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। मलिक काफूर ने देवगिरि पर पुनः चढ़ाई करके उसको पूरी तरह ध्वस्त कर दिया और वहाँ के सारे मन्दिर गिराकर उसके मलवे से मस्जिदें बनायीं। इस युद्ध में शंकरदेव मारा गया और वहाँ पर मुसलमान सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। इस समय चित्तौड़ छोड़कर लगभग सारे भारत पर अलाउद्दीन खिलजी का शासन हो गया और यह राज्य अकबर तथा औरंगजेब के राज्य से भी बड़ा राज्य था।

अलाउद्दीन खिलजी एक अत्यन्त कट्टर तथा हिन्दू विरोधी मुसलमान शासक था। वह जहाँ भी जाता था, मन्दिरों को गिराता था, खड़ी फसलों में आग लगवा देता था और हिन्दुओं पर सब प्रकार के अमानवीय अत्याचार

करता था। क़त्ल-ए-आम और महिलाओं के साथ बलात्कार एक अनिवार्य कार्य था।

२ जनवरी, सन् १३१६ को अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के पश्चात्, उसका सेनानायक मलिक काफूर ही सल्तनत का सर्वेसर्वा बन बैठा। उसने अलाउद्दीन खिलजी के दो बड़े बेटों ख़िज्र खाँ और शादी खाँ की आँखें निकलवाकर उन्हें अन्धा करके बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया और ६ वर्ष की आयु के शहाबुद्दीन उमर को गद्दी पर बैठाया और स्वयं शासन करने लगा। उसने अलाउद्दीन की विधवा से विवाह किया और उसकी सम्पत्ति हड़प लेने के पश्चात् उसे भी जेल में डाल दिया। मलिक काफूर ने अलाउद्दीन के तीसरे बेटे मुबारक खाँ को भी जेल में डाल दिया, परन्तु जिन हत्यारों को मलिक काफूर ने अन्धा करने के लिए जेल भेजा, उन्होंने ही मुबारक के साथियों से धन पाकर मलिक काफूर की हत्या कर दी और मुबारक शहाबुद्दीन उमर का संरक्षक बन गया।

दो माह पश्चात् ही उसने अपने भाई को गद्दी से उतारकर उसे अन्धा कर दिया और १ अप्रैल, १३१६ को कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के नाम से वह स्वयं गद्दी का स्वामी बन बैठा। दिल्ली शासन के कमजोर होते ही देवगिरि के यादव राजा, राजपूताना की कुछ रियासतों और मारवाड़ ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। गुजरात भी विद्रोही हो गया। सुल्तान ने ऐनुद्दीन मुल्तानी को विद्रोह दबाने के लिए भेजा। उसने गुजरात को पराजित कर जाफ़र खाँ को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया। मुबारक ने स्वयं १३१७ में देवगिरि पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा हरपाल को पकड़कर उसकी खाल जिन्दा उतरवा ली तथा उसके सिर को काटकर देवगिरि के फाटक पर लटकवा दिया। देवगिरि, गुलबर्गा, सागर और द्वारसमुद्र सभी को पराजित कर वहाँ मुस्लिम शासक नियुक्त कर दिये। उसने मलिक ऐखुलाकी को देवगिरि का सूबेदार बनाया और वहाँ के मन्दिर गिराकर उनके मलवे से एक विशाल मस्जिद बनायी। उसने खुसरू खाँ को मालवा का विद्रोह दबाने के लिए भेजा। मुबारक ने अपने सारे विरोधियों की हत्या करवा दी और ख़िज्र खाँ कीं पत्नी, गुजरात की पूर्व राजकुमारी देवलदेवी से विवाह कर लिया।

खुसरू खाँ, जिस पर मुबारक का बड़ा विश्वास था, उसको उसने अपनी सेना बनाने की खुली छूट दे दी। खुसरू ख़ान को गुजरात आक्रमण के समय

मलिक काफूर ने बन्दी बनाया था और उसे अलाउद्दीन खिलजी को सौंप दिया था। खुसरू खान एक अत्यन्त खूबसूरत, तेजस्वी, हिन्दू बालक था। उसे कुछ इतिहासकार राजपूत मानते हैं और कुछ गुजरात की अस्पृश्य जाति, परिया का। बालक को मुसलमान बनाकर हसन नाम रख दिया गया था। मलिक काफूर ने ही इसकी वीरता से प्रभावित होकर खुसरू खान की उपाधि दी थी।

खुसरू खान ने मुबारक के नेतृत्व में १३१८ में दक्षिण भारत पर चढ़ाई की। उसने वहाँ के समस्त स्वतंत्र राज्यों को पराजित कर अपार सम्पत्ति पाई, जिसे उसने सुल्तान मुबारक को सौंप दिया। उसने एक बार फिर मालाबार पर चढ़ाई कर वहाँ के राजा को हराया और वहाँ से भी अकूत धन-सम्पत्ति लूटकर लाया। कहते हैं कि दक्षिण भारत पर आक्रमण के समय उसने वहाँ के हिन्दू राजाओं के साथ मिलकर योजना बनाई और वहाँ पर हिन्दू साम्राज्यशाही स्थापित करने का षड्यन्त्र किया।

सन् १३१९ के अन्त में एक दिन रात्रि को राजमहल में खुसरू खान ने अपने हिन्दू सैनिकों से मुबारक का वध करवाकर सत्ता हथिया ली। देवलदेवी से भी इस सम्बन्ध में उसकी साँठ-गाँठ थी। षड्यन्त्र सफल होने पर उसने देवलदेवी से विधिवत विवाह कर लिया। गुजरात में उसने अपने भाई को गद्दी पर बिठा दिया। हिन्दुओं पर होने वाले सारे अत्याचारों का उसने अन्त किया और उन पर लगाये गये सारे कर समाप्त कर दिये।

१५ अप्रैल, १३२० को उसने एक सार्वजनिक घोषणा की–

"आज तक मुझे केवल बलात्कार से मुसलमानों का सा धर्मभ्रष्ट जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ा, फिर भी मूलतः मैं हिन्दू का पुत्र हूँ। मेरा बीज हिन्दू बीज और मेरा रक्त हिन्दू रक्त है। अतः चूँकि आज मुझे "सुल्तान" का समर्थ और स्वतन्त्र जीवन प्राप्त है, इसलिए मैं अपने पैरों की धर्मभ्रष्टता की बेड़ी तोड़ता हुआ घोषित करता हूँ कि मैं हिन्दू हूँ। अब प्रकट में इस विशाल एवं अखण्ड भारत खण्ड के हिन्दू सम्राट् के नाते इस सिंहासन पर आरूढ़ हुआ हूँ। इसी तरह कल तक "सुल्ताना" कहलाने वाली देवलदेवी, जो मूलतः एक हिन्दू राजकन्या है, जिसे अपने पिता और देवगिरि के राजा अपने पति के साथ जंगल-जंगल भटकते हुए पिता और पति को मारकर छीना गया और दिल्ली में लाकर सुल्तान के अंतःपुर में ख़िज़्रख़ान की बेग़म बनाकर जिसकी घोर

विडम्बना की गयी और अभी कुछ दिन पूर्व राज्य क्रान्ति में मारे गये मुबारक ने अपने भाई को मरवाकर जिसके साथ बलात् विवाह किया और धर्मांतरित सुल्ताना बनाया, वह आज की मेरी सम्राज्ञी, जन्म से, बीज से और रक्त से मूलतः हिन्दू राजवंश की है, इसलिए वह भी अपने धर्मांतरित इस्लामियत को धिक्कारती, अब से हिन्दू की तरह ही जीवन बिताएगी। हम दोनों की यह प्रतिज्ञा हमारे बलात्कारजनित अतीत धर्मभ्रष्टता के पाप का परिमार्जन करे।" (भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ- विनायक दामोदर सावरकर)

नासिरुद्दीन शाह की इस घोषणा से सारे मुसलमान हक्का-बक्का रह गये और उसके विरुद्ध हो गये। पंजाब के सूबेदार गाज़ी मलिक ने उस पर आक्रमण किया। इन्द्रप्रस्थ में दोनों का सामना हुआ पर सेनापति, ऐनुलमुल्क के ठीक युद्ध के समय धोखा देने के कारण खुसरू शाह की हार हुई और ५ सितम्बर, १३२० को उसकी हत्या कर दी गयी।

तुग़लक वंश

गाज़ी मलिक, गयासुद्दीन तुगलक के नाम से दिल्ली का शासक बना। तुगलक वंश ने लगभग १०० वर्षों तक दिल्ली का शासन किया। वह तुर्क मुस्लिम था। उसने गद्दी पर बैठने के पश्चात् सारे स्वतन्त्र हो गये हिन्दू राजाओं को कुचलने का काम प्रारम्भ किया। गयासुद्दीन ने १३२१ में अपने बेटे जूना खाँ को वारंगल पर आक्रमण करने के लिए भेजा। जूना खाँ पराजित हुआ, परन्तु १३२३ में जूना खाँ ने पुनः एक बहुत बड़ी सेना लेकर वारंगल पर आक्रमण किया। इस बार वारंगल नरेश रुद्रदेव की पराजय हुई और उसे बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाया गया। बंगाल और तिरहुत के विद्रोहों को भी उसने कुचल दिया। बंगाल की विजय के पश्चात् दिल्ली लौटते समय मार्ग में अफगानपुर में उसके पुत्र, जूना खाँ द्वारा ही एक नकली इमारत को उसके ऊपर गिराकर सुल्तान गाज़ी मलिक गयासुद्दीन तुगलक और उसके दूसरे बेटे महबूब खाँ की हत्या कर दी गयी। पिता की हत्या कर १३२५ में जूना खाँ मुहम्मद बिन तुगलक के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हो गया।

गद्दी पर बैठते ही उसे सागर, मुल्तान, बंगाल, अवध, लाहौर, मालवा, कारा, बीदर, गुलबर्गा, सुनाम, सामना आदि राज्यों के विद्रोह का सामना

करना पड़ा। परन्तु उसने सभी को अत्यन्त निर्ममतापूर्वक कुचल दिया। इन विद्रोहों को कुचलने में उसे १५ वर्ष का कठिन परिश्रम करना पड़ा। परन्तु उसने बड़ी नृशंसतापूर्वक सभी विद्रोहों को कुचला और विद्रोहियों पर बर्बर अत्याचार किये।

कुछ इतिहासकारों ने इस प्रकार का वर्णन किया है कि मुहम्मद तुगलक देवगिरि के आक्रमण के समय दो नौजवान भाइयों को अपने साथ पकड़कर दिल्ली ले गया और उन्हें मुसलमान बना लिया। इन दोनों शूरवीर भाइयों ने अल्पकाल में ही असाधारण शौर्य एवं रणकुशलता का परिचय दिया और वह शीघ्र ही सुल्तान के विश्वास एवं कृपापात्र बन गये। बाद में यह दोनों शूरवीर भाई मोहम्मद तुग़लक के द्वारा सेनापति बनाकर दक्षिण भारत की विजय के लिए भेजे गये। जहाँ उन्होंने पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया तथा हरिहर और बुक्काराय के नाम से सन् १३३६ में उन्होंने श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु, विद्यारण्य स्वामी, के मार्गदर्शन में विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।

गत लगभग १५० वर्ष की, भारत के धर्मप्राण, शान्तिप्रिय, उच्च विश्व-बन्धुत्व एवं मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत हिन्दुओं पर मुसलमानों की धर्मांध बर्बरता ने हिन्दुओं की अंतरात्मा को झकझोर दिया। हिन्दू धर्म, संस्कृति, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान तथा महान् जीवन शैली का मुसलमानों द्वारा विनाश का ही स्वाभाविक परिणाम था- हिन्दुओं का अभूतपूर्व महान् संगठन और विजयनगर साम्राज्य की स्थापना।

(ब) बहमनी राज्य का उदय

सन् १३४७ में अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी द्वारा दक्षिण के बहमनी राज्य की स्थापना की गयी, जिसकी राजधानी गुलबर्गा थी और जो १४० वर्षों तक अस्तित्व में रहा।

हसन दिल्ली के ब्राह्मण-ज्योतिषी गंगू के यहाँ सेवक था। गंगू, मोहम्मद तुगलक का प्रिय पात्र था। एक दिन गंगू के खेत जोतते समय हसन को सोने की अशर्फियों से भरा हुआ एक कलश मिला। हसन ने उसे लाकर गंगू को दे दिया। गंगू ने प्रसन्न होकर उसकी सिफारिश मोहम्मद तुगलक से की और उसके यहाँ अच्छी नौकरी में लगवा दिया। साथ ही उसने यह भी हसन के लिए

भविष्यवाणी की, कि वह एक दिन स्वतन्त्र राज्य का शक्तिशाली सुल्तान बनेगा और १३४७ में जब मोहम्मद तुगलक की दक्षिण भारत में स्थिति कमजोर हो गयी, तब हसन ने गुलबर्गा को राजधानी बनाकर बहमनी राज्य की स्थापना की। उसने बहमनी नाम अपने ब्राह्मण स्वामी के सम्मान के लिए रखा। (फरिश्ता)

निजामुद्दीन अहमद, अहमद अमीन राज़ी तथा हाजी-उर-पवीर इतिहासकार फरिश्ता की इस कहानी से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार हसन, पारसी सेनानायक बहमन का वंशज था। उसने अपना राजतिलक सुल्तान "अलाउद्दीन हसन बहमन" के नाम से कराया और गुलबर्गा का नाम बदलकर अहसानाबाद कर दिया।

हसन एक शूरवीर शक्तिशाली शासक था। उसने अपने राज्य का विस्तार उत्तर में वाणगंगा, दक्षिण में कृष्णा नदी, पश्चिम में दौलताबाद और पूर्व में भवनगिरि तक कर लिया। उसने अपने राज्य को चार सूबों- गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार और बीदर में विभक्त कर, चारों का एक-एक सूबेदार नियुक्त किया।

सन् १३५८ में हसन की मृत्यु हो गयी। इतिहासकारों के अनुसार वह एक न्यायप्रिय दयालु शासक था और हिन्दू, मुसलमान सबसे समान व्यवहार करता था। कोई राज्य जीतने के पश्चात् वह वहाँ के राजवंशज को, वह राज्य अपने राज्य के अधीन जागीर के रूप में, उसे वापस कर देता था। वह ग़रीबों का सहायक तथा न्यायप्रिय शासक था। इसी कारण वारंगल के राजा ने बिना किसी संघर्ष के उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। अपने विरुद्ध षड्यन्त्र करने वालों को वह बड़ी निर्ममतापूर्वक कठोर दण्ड देता था।

१३५८ से १३७५ तक मोहम्मद प्रथम, १३७५ से १३७८ तक मुजाहिद, १६ अप्रैल से २१ मई १३७८ तक दाऊद, १३७८-१३९७ तक महमूद, अप्रैल २० से जून १४ सन् १३९७ तक गयासुद्दीन, जून १४ से नवम्बर १५, सन् १३९७ तक शमसुद्दीन का शासन रहा। १३९७ से १४२२ तक फीरोजशाह का शासन रहा। अन्तिम ताजुद्दीन फीरोजशाह के शासनकाल में १३९९ में विजयनगर के साथ प्रथम, १४०६ में द्वितीय तथा १४२० में तृतीय युद्ध हुआ, जिनका वर्णन यथासमय दिया जावेगा।

१४२२ में फीरोजशाह की हत्या कर उसका भाई अहमदशाह गद्दी पर

बैठा। १४२० की पराजय का बदला लेने के लिए उसने १४२३ में एक विशाल सेना लेकर विजयनगर पर अत्यन्त प्रबल आक्रमण किया। विजयनगर के राजा देवराय द्वितीय ने बहुत बड़ी धनराशि चुकाकर अपनी जान बचायी। १४२५ में अहमदशाह ने वारंगल पर आक्रमण कर वहाँ के राजा की हत्या कर दी और वारंगल को अपने राज्य में मिला लिया। उसने मालवा, कोंकण और तेलंगाना पर भी आक्रमण किया। १४३५ में उसकी मृत्यु हो गयी और अलाउद्दीन द्वितीय सुल्तान बना।

बहमनी राज्य का विभाजन

१४८९-९० में बहमनी शासन कमजोर पड़ गया। उसके सूबेदारों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर नये स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना कर ली, जो निम्न प्रकार थे-

१. बीजापुर का आदिलशाही राज्य

२. अहमदनगर का निजामशाही राज्य

३. बरार का इमादशाही राज्य

४. गोलकुण्डा का कुतुबशाही राज्य

५. बीदर का वरीदशाही राज्य

१५२७ में अन्तिम शासक क़लीम-उल्ला शाह की मृत्यु के पश्चात् बहमनी राज्य का अन्त हो गया।

द्वितीय अध्याय

दक्षिण भारत के स्वतन्त्र हिन्दू राज्य

दक्षिण भारत में मौर्यकाल में भी तीन स्वतन्त्र राज्यों की सत्ता अक्षुण्ण रही, जबकि शेष समस्त भारत, मगध के मौर्यों के सामने नत-मस्तक हो गया था। यह तीन द्रविड़ राज्य थे- चोल, चेर और पांड्य। यह तीनों राज्य अत्यन्त प्राचीन थे और इनकी स्थापना का इतिहास कहीं नहीं मिलता। भारत के प्राचीनतम ग्रन्थों वेद, पुराण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि में उल्लेख मिलता है। अतः इन राज्यों के प्राप्त इतिहास का यहाँ वर्णन करना आवश्यक लगता है।

(१) चोल

चोल, दक्षिण भारत का सबसे पुराना राज्य, तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से अस्तित्व में माना जाता है। चोल दक्षिण भारत के पूर्व तटीय क्षेत्र पर कावेरी के दक्षिण में शासन करते थे, जबकि चेर पश्चिम तटीय क्षेत्र पर और पांड्य दक्षिणी क्षेत्र पर।

चोल राज्य के इतिहास के बारे में राजराजा के शासनकाल, ११वीं शताब्दी तक कुछ पता नहीं चलता है। कहीं-कहीं पर कुछ शिलालेख मिले हैं, परन्तु फिर भी उनसे कुछ ज्ञात नहीं किया जा सकता। ११वीं शताब्दी के पल्लव और चालुक्य शासकों के शिलालेखों द्वारा चोल राज्य के प्रभाव का कुछ ज्ञान होता है। इस समय के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि सन् ८९४ ई० में आदित्य वर्मा नाम के चोल राजा ने कोंगू देश को जीता और १०वीं शताब्दी तक वह उनके अधिकार में रहा। थोड़े समय के लिए पश्चिमी चालुक्यों ने चोल राज्य पर अधिकार कर लिया, परन्तु महान् शासक राजराजा ने पुनः विजय प्राप्त कर ली और तंजौर नगर का पुनर्निर्माण किया। २४७ ई०पूर्व में चोलों ने

लंका पर विजय प्राप्त की और ४४ वर्षों तक वहाँ शासन किया। बाद में भी चोलों और लंका के बीच युद्ध होता रहा और कभी एक की, कभी दूसरे की विजय होती रही। चोल, चालुक्य, पांड्य और पल्लव राज्य परस्पर छोटे-छोटे युद्धों में सदैव संलग्न रहते थे। चोल राज्य की राजधानी पहले उरैयूर फिर मलायकुरम या मलकोटा और बाद में तंजौर बनी। इनके ध्वज पर शेर का चिह्न था। राजराजा ने १०२३ से १०६४ तक ४१ वर्षों तक शासन किया। राजराजा और उसका पुत्र कुलोत्तुंग प्रथम दोनों बड़े शूरवीर और कुशल प्रशासक थे। राजराजा ने व्यंगी और कलिंग दोनों राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया था। सन् १०५० में राजराजा ने लंका पर आक्रमण कर वहाँ के शासक मिहिन्द को बन्दी बना लिया और वहाँ पर अपना सूबेदार नियुक्त कर दिया। सन् १०६४ में कुलोत्तुंग प्रथम शासक बने। इस समय चोल और चालुक्य दोनों का सम्मिलित राज्य था। इसने पांड्य राज्य को जीतकर अपने राज्य की सीमा भारत के दक्षिणी छोर से लेकर उड़ीसा तक पहुँचा दी। कांची के पल्लवों को भी बुरी तरह से कुचलकर अपने राज्य में मिला लिया। ११वीं शताब्दी में चोल राज्य ने बंगाल भी विजय कर लिया। १०७५ ई० में चालुक्य शासक विक्रमादित्य ने चोलों को हराया और उनकी कन्या से विवाह भी कर लिया। परन्तु कुछ वर्षों बाद चोलों ने पुनः चालुक्यों को हरा दिया। कुलोत्तुंग का छोटा भाई मदुरा के गंग वंश को हराकर वहाँ के राज्य का शासक बन बैठा। कुलोत्तुंग प्रथम के बाद केवल एक शक्तिशाली राजा राज राजेन्द्र चोल हुआ। जिसने १२१६ से १२३२ तक शासन किया। सन् १३१० में मलिक काफूर ने चोल राज्य पर आक्रमण कर उसे पूरी तरह से ध्वस्त कर दिया और वहाँ पर अपना सूबेदार नियुक्त किया। मुस्लिमों ने इस राज्य पर सन् १३४७ तक शासन किया, जबकि उन्हें दक्षिण भारत के हिन्दू शासकों की सम्मिलित शक्ति ने कृष्णा नदी के उत्तर में खदेड़ दिया।

१४वीं शताब्दी के अन्त में विजयनगर साम्राज्य के शासक हरिहर ने चोल राज्य को विजयनगर साम्राज्य में मिला लिया। चोल राजाओं ने इस प्रकार लगभग ३००० वर्षों तक दक्षिण भारत का शासन किया।

(२) पांड्य

भारत के दक्षिणी छोर पर स्थित पांड्य राज्य के बारे में भी कहना कठिन

है कि इसकी स्थापना कब हुई, परन्तु ऐसा लगता है कि ईसा से शताब्दियों पूर्व इसका अस्तित्व था। पुराण, महाभारत और भागवत जैसे अतिप्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है। यूनानी इतिहासकारों ने और ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में मेगस्थनीज़ ने इसका वर्णन किया है। वाराहमिहिर ने अपनी वृहत् संहिता में इसका वर्णन किया है। बाद के लगभग सभी इतिहासकारों ने पांड्य राज्य के बारे में लिखा है। इस ऐश्वर्यशाली राज्य की राजधानी मदुरा थी। रोम और यूनान तथा अफ्रीका के पूर्वी देशों से इसका व्यापार होता था। सोने और चाँदी के इस राज्य के सिक्के, बहुत बड़ी मात्रा में, प्राप्त हुए हैं। मेगस्थनीज़ के वर्णनानुसार उस समय यहाँ किसी रानी का शासन था। इसकी सेना में १,३०,००० पैदल, ४,००० घुड़सवार और ५०० हाथी थे। सम्भवतया इसी कारण मौर्यों को इनके ऊपर हाथ डालने का साहस नहीं हुआ। सन् ८४० में पांड्यों ने लंका पर आक्रमण किया और उनसे बड़ी मात्रा में धन वसूल किया। कुछ समय पूर्व लंका के राजा ने पांड्य राज्य पर अक्रमण किया था। इन्होंने पांड्य राज्य को पराजित कर मदुरा को बुरी तरह लूटा। चोल राज्य से भी पांड्य राज्य का संघर्ष बराबर चलता रहता था और कभी विजय, कभी हार का यह क्रम बराबर चलता रहता था। पांड्य शासक चन्द्रवंशी थे। सन् १११३ में यहाँ कामदेव नाम के राजा का राज्य था और उसके राज्य में गोकर्णपुर तथा कोंकण भी सम्मिलित थे। सन् ११२५ में यहाँ त्रिभुवनमल्लराय पांड्यदेव का शासन था। सन् ११४९ में यहाँ जगदिकमल्ल वीर पांड्य का उल्लेख मिलता है। इसने राजेन्द्र चोल को हराया था।

मलिक काफूर ने होयसल बल्लालों को पराजित करने के पश्चात् १३११ के आस-पास मदुरा के पांड्य राज्य का भी पूर्ण विनाश कर दिया और उसके बाद इस राज्य का कोई इतिहास नहीं मिलता। मदुरा का पराभव कर मलिक काफूर दिल्ली वापस लौट गया।

(३) पल्लव

पल्लव राज्य भारत के पूर्वी तट पर एक अत्यन्त प्राचीन राज्य था। किसी समय में इनके राज्य में पूर्वी तट और चोल राज्य के उत्तर का बहुत-सा भाग सम्मिलित था और उनकी उत्तरी सीमा गोदावरी नदी तक थी। इनकी राजधानी

"कांची" थी। इनके ध्वज पर शेर का चिह्न था और यह लोग बड़े युद्धप्रिय और शूरवीर थे। इन्होंने चालुक्य, चोल, गंग और होयसल सभी पर विजय प्राप्त की थी। ६४० ई० में ह्वेनसांग कांची आया था और उसने लिखा है, "इस ऐश्वर्यशाली नगर का घेरा ६ मील का है और यह लोग बड़े शूरवीर, धार्मिक मनोवृत्ति के, न्यायप्रिय, विद्याप्रेमी तथा नैतिकतावादी हैं।" ७वीं शताब्दी में जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने कांची में अद्वैतवाद का प्रचार किया था। ६९४ ई० में चालुक्यों ने पल्लवों को हरा दिया। यह कांची की प्रथम पराजय थी। इसके बाद पल्लव राज्य की कई पराजय हुईं। कोंगू नरेश ने भी इन्हें हराया। पश्चिमी चालुक्यों के पुलकेशी द्वितीय ने पल्लवों को हराकर इनके राज्य का बहुत बड़ा भाग छीन लिया तथा इन्हें कांची के आस-पास सीमित कर दिया। ७४० ई० के आस-पास पश्चिमी चालुक्य नरेश विक्रमादित्य द्वितीय ने पल्लवों के राजा नंदीपोत वर्मा की हत्या कर दी। पल्लवों और चालुक्यों के यह युद्ध कई पीढ़ियों तक चलते रहे।

बाद में पल्लवों की कई शाखाएँ हो गयीं, जो भिन्न-भिन्न जगहों पर छोटे-छोटे राज्यों में शासन करती रहीं। सन् १०७४ में जयसिंह देव, जो कि चालुक्य राजाधिराज विक्रमादित्य त्रिभुवनमल्ल का छोटा भाई था, उसने पल्लव राज्य पर शासन किया। उसकी माता पल्लव वंश की थी। इस प्रकार पल्लव वंश विभिन्न आक्रमणों के कारण दुर्बल हुआ और उनका महत्त्व समाप्त हो गया।

(४) चालुक्य

चालुक्य दक्षिण भारत में चोलों और पांड्यों के समकालीन थे। चौथी शताब्दी में कर्नाटक प्रदेश में इनका आधिपत्य स्थापित हो गया। ४८९ में एक आलेख के अनुसार जयसिंह का पुत्र पुलकेशी अत्यन्त शक्तिशाली राजा हुआ। दक्षिणी चालुक्यों की राजधानी भीमा नदी पर बनी थी। बाद में इन्होंने कल्यान पर भी कब्जा कर लिया। इनका मंत्री वासप्पा था, जिसने "लिंगायत" सम्प्रदाय की नींव डाली। चालुक्यों की पहली राजधानी "वातापी" थी, जो इस समय बीजापुर जनपद में "बादामी" नाम से जानी जाती है।

चालुक्य अपना सम्बन्ध अयोध्या से मानते थे और इनके वंश के बहुत से शासकों ने अयोध्या में भी शासन किया। इस राज्य के संस्थापक "पुलकेशी प्रथम" थे। इन्होंने कोंकण के मौर्यों, वैजयन्ती के कदम्बों, उत्तरी महाराष्ट्र के

कल्चुरियों और मालवा को पराजित किया था। पुलकेशी द्वितीय इनका सबसे शक्तिशाली राजा था और इसने ६०९ से ६४२ तक शासन किया। कावेरी और नर्मदा के बीच इसका एकछत्र साम्राज्य था और इनका शासन गौतमी पुत्र सातकर्णी की याद दिलाता था। इन्होंने कन्नौज के हर्षवर्धन के आक्रमण को निष्फल कर दिया और कांची के महेन्द्र वर्मन को हराया। इनका ईरान के सम्राट् से सीधा सम्बन्ध था। पल्लव नरेश नरसिंह वर्मन प्रथम ने पुलकेशी को हराया और वातापी का विध्वंस किया।

पुलकेशी द्वितीय के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम ने शत्रुओं को हराकर अपना राज्य पुनः स्थापित किया। सन् ७५३ में विक्रमादित्य द्वितीय को उसी के एक सेनानायक दंतिदुर्ग ने पराजित कर सत्ता छीन ली और "राष्ट्रकूट" वंश के नाम से नये राज्य की स्थापना की।

(५) राष्ट्रकूट

राष्ट्रकूट अपना सम्बन्ध भगवान् कृष्ण के एक प्रमुख यादव सरदार "सात्यकी" से जोड़ते हैं। राष्ट्रकूटों का राज्य दक्षिण गुजरात मालवा और बघेलखण्ड से लेकर दक्षिण में तंजौर तक था। राष्ट्रकूट साहित्य और स्थापत्य-कला के संरक्षक थे। कृष्ण प्रथम ने एलोरा के कैलाश मन्दिर का निर्माण कराया था। राष्ट्रकूटों ने कन्नौज के प्रतिहारों वातापी के चालुक्यों, कांची के पल्लवों और गंगा के दोआब के गौड़ राजा को हराया था। बंगाल का धर्मपाल भी उनसे हारा था। "अमोघ वर्ष प्रथम", जिसने ८१५ से ८७७ ई० तक शासन किया और अपनी राजधानी मारखेड़ में बनायी। ९७३ ई. में चालुक्यों के एक वंशज कृष्ण तृतीय ने पराजित किया और इस प्रकार राष्ट्रकूट वंश की समाप्ति हो गयी। इस राज्य के तीन भाग बनकर देवगिरि (यादव), वारंगल (काकतेय) और कर्नाट (होयसल) राज्यों में मिल गये।

(६) होयसल वल्लाल

यह यादवों के वंशज थे और ११वीं शताब्दी में इन्होंने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया, जो १४वीं शताब्दी तक स्थापित था और इसे उत्तर के मुस्लिम आक्रमणकारियों ने ध्वस्त कर दिया। इनकी राजधानी मैसूर राज्य में द्वारसमुद्र में थी। इन्होंने अपने चारों ओर के क्षेत्र को विजय करके अपने राज्य

में मिला लिया। विष्णुवर्धन द्वारा बनवाये गये बेलूर और हेल्बिड के मन्दिर स्थापत्य-कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। १२२४ में इन्होंने हरिहर का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया। विष्णुवर्धन ने रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत संप्रदाय को अपना लिया था। इसने १११७ से ११३७ तक शासन किया। वीर बल्लाल द्वितीय ने कल्चुरियों को हराया और १२२४ तक शासन किया। उसका पुत्र नरसिंह द्वितीय, देवगिरि के यादवों से पराजित हुआ और उसके राज्य का कुछ भाग यादवों के आधिपत्य में चला गया। वीर बल्लाल देव तृतीय के समय मुसलमानों का इस राज्य पर प्रथम आक्रमण हुआ। १३१० में अलाउद्दीन खिलजी ने होयसल बल्लालों पर आक्रमण किया तथा राजा को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया। बाद में उसे सन् १३१३ में मुक्त किया। दिल्ली से लौटकर उसने अपना राज्य पुनः व्यवस्थित किया। इस समय (१३२५) में दक्षिण भारत में केवल होयसल वल्लाल तृतीय का राज्य ही स्वतंत्र बचा था। १३२७ में उसके सरदार कुमाता के राजा कम्पिल राय ने विद्रोह किया, जिसे उसने बुरी तरह कुचल दिया। युद्ध में कम्पिल राय मारा गया। १३३० के पश्चात् वल्लाल ने अपनी नई राजधानी होज़पट्टन में बनायी, जो विरूपाक्ष होज़पट्टन भी कहलाती थी। हम्पी के इष्टदेव विरूपाक्ष (भगवान शिव) तथा युवराज वल्लाल चतुर्थ दोनों का नाम विरूपाक्ष था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार विरूपाक्ष होज़पट्टन ही आगे चलकर विजयनगर नाम से कर्नाटक राज्य की राजधानी बना। मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के एक उल्लेख के अनुसार १३३७ में होयसल बल्लाल तृतीय ने अपने राज्य के उत्तरी क्षेत्र का दौरा कर अपने सभी सामंतों से विचार-विमर्श कर उनकी एक बैठक बुलायी। रुद्रदेव का पुत्र कृष्णा नायक वारंगल से कर्नाटक के महाराजा वल्लाल देव के पास गया। दोनों में दक्षिण भारत में मुसलमानों के बढ़ते हुए प्रभाव, उनके हिन्दुओं पर हो रहे निर्मम एवं अमानुषिक अत्याचारों तथा समाप्त हो रहे हिन्दू राज्यों के बारे में विचार-विमर्श हुआ। उन्होंने उन प्राप्त समाचारों पर भी गम्भीर चिन्ता की, जो मुसलमान शासकों द्वारा हिन्दू राज्यों और हिन्दू धर्म को दक्षिण भारत से समूलोच्छेदन की योजना के बारे में थे। दोनों ने मिलकर यवनों के विरुद्ध दक्षिण भारत के समस्त राज्यों, जागीरदारों तथा शूरवीरों को संगठित कर यवनों की सत्ता को दक्षिण भारत की ओर बढ़ने से रोकने तथा जहाँ-जहाँ उन्होंने पैर जमा लिये थे, वहाँ से उखाड़ फेंकने की योजना बनायी।

वल्लाल देव ने अपने राज्य की उत्तरी सीमा पर स्थित पहाड़ियों के बीच एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया और उनका नाम अपने पुत्र बिज्जा के नाम पर बिज्जानगर रखा, जो बाद में विजयनगर कहलाया। इस योजना के संरक्षक तथा मार्गदर्शक श्रृंगेरी की शारदापीठ के अधिपति जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी विद्यातीर्थ थे।

सन् १३४२ में वल्लाल तृतीय एक भयंकर युद्ध में विश्वासघात का शिकार होकर पराजित हुआ तथा कनानूर कुप्पम के युद्ध में ८० वर्ष की अवस्था में वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र वल्लाल चतुर्थ ने पिता के कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया। १३४३ में उसका राजतिलक हुआ, परन्तु १३४५ के पश्चात् उसका कहीं वर्णन नहीं मिलता और लगता है कि १३४५ में द्वारसमुद्र का यह राज्य बुक्काराय प्रथम के शासनकाल में विजयनगर साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया।

(७) कदम्ब

कदम्ब भी दक्षिण भारत के पुराने शासकों में से थे। इनके शासक त्रिनेत्र कदम्ब का वर्णन १६८ ई० में टालमी द्वारा किया गया है। इनकी राजधानी बनवासी थी और उसके चारों ओर का क्षेत्र इनके राज्य में था। पश्चिम में इनका राज्य समुद्र तट तक था। यह लोग ब्राह्मण थे और घरों के सामने कदम्ब के वृक्ष लगाते थे। इनके संस्थापक मयूर शर्मा थे और उन्होंने पल्लवों पर आक्रमण कर उनके राज्य का एक भाग विजय कर, अपना राज्य स्थापित किया था। पल्लवों ने उनको मान्यता दे दी थी। इनका शासन उत्तर में मालवा तक था। इनके शासन का प्रमुख केन्द्र उत्तर पश्चिमी मैसूर था। छठी शताब्दी में चालुक्यों ने इन पर आक्रमण कर इनके शासन का अन्त कर दिया, परन्तु कदम्ब परिवार के लोग १४वीं शताब्दी तक चोलों, चालुक्यों तथा होयसलों के अधीनस्थ छोटे-छोटे शासकों के नाते शासन करते रहे। १४वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य में इनका विलय हो गया।

(८) यादव वंश

यद्यपि देवगिरि के यादवों का विजयनगर साम्राज्य से कोई लेना-देना नहीं रहा, फिर भी उसका वर्णन इसलिए आवश्यक है कि वह एक प्रकार से दक्षिण भारत पर मुस्लिम आक्रमण का प्रवेशद्वार रहा। देवगिरि के यादवों का

अपने ही वंश के द्वारसमुद्र के होयसल वल्लालों से युद्ध होता रहता था। देवगिरि के राज्य की स्थापना संभवतया ५वीं शताब्दी ई०पूर्व में हेमजी यादव ने की थी। ११९० ई० में यादवों ने चालुक्यों के राज्य का पश्चिमी भाग जीत लिया था। द्वारसमुद्र के वल्लालों पर भी इनकी विजय का उल्लेख मिलता है। कल्चुरि राज्य की समाप्ति पर इन्होंने उनके राज्य के उत्तरी भाग को भी हड़प लिया। ११९१ ई० में तेलंगाना के चोलों पर भी इनकी विजय का वर्णन मिलता है। इनके ध्वज पर सुनहरे गरुड़ का चित्र था और इनका शासन गोदावरी नदी के उत्तर में मुख्यतः खान देश में था। इन्होंने कदम्बों, पांड्यों और होयसल राजाओं को कई बार हराया।

१२९४ ई० में मुस्लिमों का इन पर पहला आक्रमण हुआ, जिसमें यह पराजित हुए और बहुत बड़ी धनराशि भेंट देकर अपना बचाव किया। १३०६ ई० में मलिक काफूर ने पुनः आक्रमण कर इन्हें पराजित किया और रामचन्द्रदेव ने दिल्ली के शासक की अधीनता स्वीकार कर ली। १३९० ई० में इन्होंने वारंगल के विरुद्ध मलिक काफूर का साथ दिया। रामचन्द्र यादव के पुत्र शंकर यादव ने शासक बनते ही अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। १३१२ ई. में मलिक काफूर ने पुनः आक्रमण किया और शंकर का वध कर दिया। १३१८ ई० में मुबारक ने देवगिरि के शासक हरिपाल पर पुनः आक्रमण किया और उसकी हत्या कर उसके सिर को देवगिरि किले पर टांग दिया। इस प्रकार यादव वंश की सत्ता हमेशा के लिए समाप्त हो गयी।

(९) वारंगल (तेलंगाना)

वारंगल का विजयनगर के इतिहास से बहुत बड़ा सम्बन्ध है, क्योंकि विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक, हरिहर और बुक्काराय वारंगल के शासक वंश के या तो राजकुमार थे या वहाँ से निष्कासित कर दिये गये राज्याधिकारी थे। दोनों ही प्रकार के तथ्य आलेखों में मिलते हैं। १२वीं शताब्दी में वारंगल राज्य का विशेष प्रभाव बढ़ा और लगभग २०० वर्षों तक यह राज्य अस्तित्व में रहा। मुस्लिमों के आक्रमण ने इनकी सत्ता को जर्जर कर दिया। कहते हैं कि ये लोग आन्ध्र प्रदेश के गणपति वंश के थे। १२वीं शताब्दी तक इनका कोई इतिहास नहीं मिलता। प्रताप रुद्रदेव प्रथम और उनका पुत्र गणपतिदेव शक्तिशाली राजा हुए। १३०९ में मलिक काफूर ने वारंगल पर आक्रमण किया, परन्तु

उसकी पराजय हुई। उसने दोबारा आक्रमण करके प्रताप रुद्रदेव को हराया और वारंगल को अधीनस्थ राज्य बना लिया। १३२३ में मुसलमानों ने पुनः आक्रमण किया और प्रताप रुद्रदेव को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गये। दिल्ली से लौटने के पश्चात् १३४४ ई० में उसने हिन्दू राज्यों को संगठित कर मुसलमानों को वापस खदेड़ दिया। १३५८ ई० में बहमनी शासक मोहम्मद शाह ने वारंगल पर आक्रमण किया और उसे बुरी तरह लूटा तथा बहुत बड़ी धनराशि कर स्वरूप वसूल कर वापस लौट गया। १३७१ में पुनः बहमनी शासक और वारंगल के शासक नागदेव के बीच भयंकर युद्ध हुआ। जिसमें नागदेव की निर्मम हत्या कर दी गयी और वेलुमपट्टम को लूट लिया गया। १४२४ ई० में पुनः बहमनी शासक ने आक्रमण कर वारंगल के शासक की हत्या कर दी और राज्य को अपने शासन में मिला लिया। इस अन्तिम शासक का नाम "कृष्ण" था।

(१०) कलिंग (उड़ीसा) का राज्य

यद्यपि कलिंग और वारंगल दक्षिण भारत के राज्य नहीं थे, परन्तु वे द्रविड़ मूल के अवश्य थे। विजयनगर साम्राज्य से इनका सम्बन्ध आने के कारण इन राज्यों को जानना आवश्यक है। उड़ीसा के शासक अपने को पाण्डवों के वंश का मानते थे। कहते हैं कि युधिष्ठिर के बाद परीक्षित ने ७३१ वर्षों तक राज्य किया। फिर जनमेजय ने ५५१ वर्ष राज्य किया और उसके पश्चात् शंकरदेव ने ४०० वर्षों तक राज्य किया। उसके पुत्र गौतम देव ने ३७० वर्षों तक राज्य किया और उड़ीसा तक अपने राज्य का विस्तार किया। उसके बाद महेन्द्रदेव ने राजमहेन्द्री को अपनी राजधानी बनाया और २१५ वर्षों तक राज्य किया। खारवेल कलिंग का अत्यन्त प्रसिद्ध, लोकप्रिय तथा शक्तिशाली शासक हुआ। उसने १६५ ई०पू० दक्षिण के समस्त राज्यों को पराजित कर दिया था। विक्रमादित्य (५७ई०पू०) और उसका भाई शकादित्य प्रसिद्ध विजेता तथा प्रसिद्ध शासक रहे। विक्रमादित्य भारत के चक्रवर्ती सम्राट् बने और उन्होंने विक्रमी संवत् चलाया। विक्रमादित्य के बाद शालिवाहन ने शासन किया और इन्होंने आन्ध्र, मगध, वारंगल और मालवा पर विजय प्राप्त की। इन्होंने हूणों को २६ ई०पू० में हराया। उड़ीसा के शासक बड़े लोकप्रिय रहे। इन्होंने सड़कें, पुल, मन्दिर सभी कुछ बनवाये एवं नगरों को बसाया। ११३२

ई० में वहाँ के शासक सुवर्णकेशी की मृत्यु हो गयी और इस प्रकार केशरी वंश का शासन समाप्त हो गया तथा चोरगंग नाम के दक्षिण के एक सेनापति ने कटक पर आक्रमण कर "गंग" वंश की स्थापना की। उसके उत्तराधिकारी गंगेश्वर ने ११५२ से ११६६ तक राज्य किया। यह बड़ा शूरवीर विजेता था और इसने गंगा से गोदावरी तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। अनंग भीमदेव ने राज्य प्रशासन में कई बड़े सुधार किये। उसने वर्तमान जगन्नाथपुरी का मन्दिर बनवाया। भीमदेव अत्यन्त लोकप्रिय शासक था और आज भी बड़े सम्मान के साथ लोकगीतों और किंवदंतियों में उसका नाम लिया जाता है। विजयनगर साम्राज्य के शासक ने १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उड़ीसा पर विजय प्राप्त की और वहाँ के राजा प्रताप रुद्रदेव की कन्या से विवाह किया एवं इस प्रकार उड़ीसा विजयनगर साम्राज्य का अधीनस्थ राज्य बन गया।

(११) अनागोंदी या अंगदि राज्य

"अनागोंदी" शब्द "अंगदि" का अपभ्रंश है। यह तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर स्थित पुराना किष्किंधा राज्य था। कहते हैं कि बालि के पश्चात् सुग्रीव और उसके पश्चात् युवराज अंगद का शासन हुआ। अंगद अत्यन्त प्रभावशाली और लोकप्रिय शासक हुआ और उसी के नाम पर उस नगर का नाम "अंगदि" पड़ा, जो बाद में बिगड़कर "अनागोंदी" हो गया।

अनागोंदी का इतिहास नन्द महाराजा के समय से मिलता है, जो कि वाह्लीक राज्य का निवासी था और उसने किष्किंधा को विजय कर अपना राज्य स्थापित किया। यह अपने को चन्द्रवंशी क्षत्रिय कहता था। नन्द ने १०१४ से १०७६ तक शासन किया। इसके पश्चात् १०७६ से १११७ तक चालुक्य महाराजा ने अनागोंदी के राज्य पर शासन किया। विजयध्वज ने १११७ से ११५६ तक यहाँ शासन किया। कहते हैं कि इसी के शासनकाल में ११५० ई० में अनागोंदी के ठीक सामने तुंगभद्रा के दक्षिणी तट पर स्थित वर्तमान हम्पी में विजयनगर की नींव पड़ी। प्रारम्भ में स्वामी विद्यारण्य के नाम पर इस नगर का नाम "विद्यानगर" रखा गया था, परन्तु शक्तिशाली साम्राज्य बनने पर इसका नाम बदलकर "विजयनगर" रख दिया गया। इस स्थान से तुंगभद्रा के उत्तर में ही ९ मील की दूरी पर कम्पिल नाम का एक अत्यन्त रमणीय स्थल

पर स्थित सुन्दर नगर था, जो अनागोंदी राज्य की द्वितीय राजधानी थी। इसके बाद अनुवेम ने ११५५ से ११७९ तक, नृसिंह देवराय ने ११७९ से १२४६ तक, रामदेवराय ने १२४६ से १२७१ तक, प्रताप राय ने १२७१ से १२९७ तक और जम्बुकेश्वर राय ने १२९७ से १३३४ तक शासन किया। जम्बुकेश्वर के कोई संतान नहीं थी। श्रृंगेरी से विद्यारण्य स्वामी १३३१ में विजयनगर आये, इन्होंने स्वर्ण की वर्षा करायी और १३३६ में विजयनगर की गद्दी पर संगम वंश के "हरिहर प्रथम" को बिठाया। अनागोंदी एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित एक सुदृढ़ दुर्ग था। नगर के चारों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियों तथा मजबूत दीवारों से घिरा हुआ था। पूर्व और दक्षिण में तुंगभद्रा नदी की स्वाभाविक किलेबन्दी थी तथा उत्तर एवं पूर्व में पर्वतीय चट्टानों की सहायता से बनायी गयी अत्यन्त मजबूत चौड़ी दीवारें थीं। पूरा अनागोंदी नगर एक सुदृढ़ प्राकृतिक दुर्ग था।

१२३० ई० में दिल्ली के शासक अल्तमश ने अनागोंदी पर आक्रमण किया। उसकी विशाल सेना से बचने के लिए अनागोंदी का राजा भागकर नौ मील दूर कम्पिल के मजबूत किले में चला गया। कई वर्षों तक युद्ध चला, अन्त में अनागोंदी की पराजय हुई। केवल ६ बूढ़े लोग शेष बचे। महिलाओं और बच्चों ने जौहर किया। इन ६ लोगों को बन्दी बना लिया गया। उसमें एक राज्य का प्रधानमंत्री और एक कोषाध्यक्ष था। अल्तमश दो वर्ष तक उस किले में रहा और अन्त में राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह हो जाने के कारण उसे दिल्ली वापस लौटना पड़ा।

तृतीय अध्याय

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना कुछ इतिहासकार सन् ११५० ई० से मानते हैं, जब अनागोंदी के राजा विजयध्वज ने तुंगभद्रा नदी के दक्षिण में स्वामी विद्यारण्य के निर्देश पर विद्यानगर के नाम से नई राजधानी बसायी। सन् १३३४ ई० में जम्बुकेश्वर राय नाम के वहाँ के शासक की मृत्यु हो गयी। जम्बुकेश्वर राय के कोई संतान नहीं थी, अतः शृंगेरी मठ के विद्यारण्य स्वामी, जो अनागोंदी शासकों के गुरु थे, वह विद्यानगर आये, वहाँ उन्होंने स्वर्ण की वर्षा करायी। दस वर्षों तक स्वयं शासन व्यवस्था संभाली और १३३६ ई० में अनागोंदी की गद्दी पर हरिहर प्रथम को बैठाया। विद्यानगर का नाम बाद में बदलकर किसी समय "विजयनगर" हो गया।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि १३३६ में ही विजयनगर के नाम से अनागोंदी दुर्ग के ठीक सामने तुंगभद्रा के दक्षिणी तट पर हम्पी के पास विजयनगर की नींव डाली गयी और वही विजयनगर साम्राज्य की राजधानी बना। अधिकांश भारतीय इतिहासकारों ने इस साम्राज्य को कर्नाटक राज्य की संज्ञा दी है।

विद्यारण्य स्वामी या माधवाचार्य द्वारा स्वर्ण की वर्षा करवाकर विजयनगर को सम्पन्न बनाये जाने के बारे में जो कथा प्रचलित है, वह निम्न प्रकार है–

माधव एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण थे। माधवाचार्य हम्पी के भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर में कठिन योग-साधना और कर्मकाण्ड में संलग्न थे। उनकी यह कठोर साधना धनप्राप्ति के लिए थी। साधना से प्रसन्न होकर देवी ने दर्शन तो दिए पर बताया कि माधव को इस जीवन में धन प्राप्त न होकर अगले जन्म में अपार धन प्राप्त होगा। इतना सुनकर माधव हम्पी छोड़कर शृंगेरी मठ चले गये और वहाँ जाकर विद्यातीर्थ मुनि के शिष्य बनकर संन्यास ग्रहण कर लिया।

इस प्रकार माधव या माधवाचार्य से वह विद्यारण्य स्वामी हो गये। यह नया जीवन उनके सामाजिक जीवन की मृत्यु और नया धार्मिक जन्म था।

अनागोंदी के महाराज जम्बुकेश्वर राय के निःसंतान मरने का समाचार पाकर वे अनागोंदी पहुँचे और उन्होंने वहाँ फैली अराजकता को समाप्त कर शासन सत्ता का स्वयं दस वर्ष तक अप्रत्यक्ष संचालन किया। उन्होंने हम्पी में भुवनेश्वरी देवी का भव्य मन्दिर बनवाया और वहाँ बराबर पूजन-वन्दन करते रहे।

१३३६ में जब हरिहर प्रथम का राजतिलक कर, विजयनगर को राजधानी बनाकर, विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली तब एक सुदृढ़ शासन के धन की आवश्यकता समझते हुए भुवनेश्वरी देवी से धन की याचना की। देवी ने पूर्व वायदे के अनुसार समस्त राज्य में स्वर्ण की वर्षा की, जिससे राजा और प्रजा दोनों अत्यन्त धनवान् और ऐश्वर्यशाली बन गये।

विजयनगर की स्थापना के बारे में कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

(१) सबसे अधिक प्रसिद्ध और मान्य कथा है कि यादव कुल के संगम नाम के एक गृहस्थ के हरिहर और बुक्क नामक दो पुत्र अनागोंदी की चाकरी में थे। सन् १३२७ में मोहम्मद तुगलक ने जब अनागोंदी पर आक्रमण कर उसे पराजित किया तो वह अपने साथ हरिहर और बुक्क को बंदी बनाकर दिल्ली ले गया। वहाँ उन्हें धर्मभ्रष्ट कर मुसलमान बना दिया गया, यह दोनों नवयुवक राजवंश के राजकुमार थे तथा यह बड़े साहसी व शूरवीर थे। इन्होंने अपने पराक्रम, ओजस्विता और शौर्य, से मुहम्मद तुगलक को अत्यन्त प्रभावित किया और उसके विश्वासपात्र बन गये।

सन् १३३१ में मोहम्मद तुगलक ने जब पुनः दक्षिण भारत को विजय करने के लिए अपनी विशाल सेना भेजी तो इसमें इन दोनों युवकों को भी सेना का प्रमुख अधिकारी बनाकर भेजा। दक्षिण में पहुँचकर इन्होंने पूर्व निश्चयानुसार तत्कालीन शारदा पीठाधीश्वर जगद्‌गुरु शंकराचार्य श्री विद्यातीर्थ मुनि से भेंट की। उन्होंने उस समय की प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध, दोनों युवकों को पुनः हिन्दू धर्म में प्रवेश कराया और एक महान् राष्ट्रभक्त, युग प्रवर्तक तथा धर्मगुरु का कर्तव्य निभाया। स्वामी विद्यातीर्थ मुनि के तीन प्रमुख शिष्य थे- माधव,

सायण और भोगनाथ। यह तीनों मायण तथा श्रीमती के पुत्र थे। यह तीनों वेदों और संस्कृत के परम विद्वान् थे। माधव ही बाद में माधवाचार्य या विद्यारण्य स्वामी बने। विद्यारण्य नाम इन्हें श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य बनने पर मिला। यह भारद्वाज कुल के अवतंश थे। बौधायन सूत्र में इनका वर्णन है। माधवाचार्य की उपाधि "सकलपुराण संहिताप्रवर्त्तक" थी। अपने गुरु की आज्ञा से ये तीनों पूरे दक्षिण भारत के विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों को एकसूत्र में पिरोने और पूरे दक्षिण भारत से मुसलमानों को बाहर निकालकर एक शक्तिशाली हिन्दू राज्य के निर्माण के अभियान पर कर्मरत हो गये। होयसल बल्लाल चतुर्थ की मृत्यु के पश्चात् यह अभियान जोर पकड़ गया और होयसल बल्लाल तृतीय की विधवा पत्नी ने इसमें विशेष योगदान दिया। इन युवकों, हरिहर और बुक्क ने आधी हिन्दू सेना को अपने साथ जोड़ लिया और उसमें नवीन भर्ती किये सैनिकों की सहायता से शेष बची मुस्लिम सेना को मिट्टी में मिला दिया। फिर विद्यारण्य स्वामी ने विजयनगर नाम के एक नये नगर को बसाकर १३३६ ई० में विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली। बड़े भाई हरिहर को हरिहर प्रथम के नाम से नये राज्य का शासक बनाया और स्वयं उसके प्रधानमंत्री बने।

श्री माधवाचार्य अर्थात् श्री विद्यारण्य स्वामी इतने अलौकिक पुरुष थे कि उन्होंने धर्म के रूढ़ शास्त्रों की लेशमात्र भी चिन्ता न करते हुए हरिहर और बुक्क की शुद्धि की। श्री विद्यारण्य स्वामी तत्कालीन विद्वानों के मुकुटमणि थे। उन्होंने संस्कृत भाषा के दो महान् ग्रन्थ भी लिखे- "पंचदशी" और "सर्वदर्शन संग्रह"। एक छोटे से राज्य को स्थापित कर उसे विशाल तथा वैभवशाली साम्राज्य में परिवर्तित करने में उनकी कूटनीतिक योग्यता तथा राजकीय व्यवहार-निपुणता का पता चलता है। (वीर सावरकर रचित भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ)

(२) दूसरा कथन यह है कि हरिहर और बुक्क वारंगल के यादव नरेश के राज्य में सैनिक सेवा में थे और १३०९ में वारंगल की पराजय के पश्चात् हरिहर और बुक्क युद्धबंदी बनाकर दिल्ली ले जाये जा रहे थे। मार्ग में भयंकर तूफान और वर्षा आ गये। सुल्तान के सभी रक्षक उसे छोड़कर भाग गये, परन्तु यह दोनों भाई सुल्तान की सहायता करते रहे। सुल्तान ने दिल्ली पहुँचकर उन्हें

सैनिक सेवा में अधिकारी बना दिया। सन् १३१० में द्वारसमुद्र के शासक, होयसल बल्लाल पर मलिक काफूर ने आक्रमण किया। जिस आक्रमणकारी टुकड़ी के हरिहर और बुक्क सेनाधिकारी थे, उसकी बुरी तरह पराजय हुई। अपमान और दण्ड से बचने के लिए दोनों भाई भागकर अनागोंदी चले गये, जहाँ उनकी विद्यारण्य स्वामी से भेंट हुई और फिर विद्यारण्य स्वामी ने उनकी सहायता से विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।

(३) तीसरा कथन यह है कि सन् १३२३ में मुसलमानों के द्वारा वारंगल की पराजय के पश्चात् हरिहर और बुक्क अपने कुछ घुड़सवार साथियों के साथ अनागोंदी चले गये थे, वहाँ उनकी स्वामी विद्यारण्य से भेंट हुई।

(४) चौथा कथन यह है कि सन् १२२० में जब माधव स्वामी अनागोंदी के पर्वतों के बीच एक संन्यासी का जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय बुक्क नाम का एक ग़रीब गड़रिया उन्हें भोजन कराता था। एक दिन स्वामी ने अपनी पूजा के पश्चात् प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया- "तुम एक महान् साम्राज्य के राजाधिराज बनोगे।" जब दूसरे गड़रियों ने यह सुना तो वह उसका राजा के समान सम्मान करने लगे और उनकी सहायता से बुक्क ने एक छोटी सेना तैयार की और आस-पास के पाँच छोटे राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें जीत लिया। यह राज्य थे- कनारा, तालीगस, कांगीवराज, नेगापताव और बैड़गा। वह बुक्का राव के नाम से शासन करने लगा। दिल्ली के शासक ने उसके राज्य पर आक्रमण किया, परन्तु पराजित हुआ। फिर बुक्क ने विजयनगर की स्थापना कर वहाँ अपनी राजधानी बनायी, अपने बड़े भाई हरिहर को वहाँ का शासक बनाया और अपने साम्राज्य को बढ़ाया। आदिवासी इस राज्य को "कनारा" राज्य कहते थे, जो बाद में कर्नाटक कहलाया।

यह कथन कितना सत्य है, यह इतिहास के शोध का विषय है।

(५) एक कथन यह भी है कि हरिहर और बुक्क होयसल बल्लाल के अधीनस्थ छोटे शासक थे, जिन्होंने बाद में शक्ति संचय कर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।

(६) रूसी यात्री निकितिन, जो १४७४ ई. में भारत आया था उसके अनुसार हरिहर और बुक्क बनवासी शासक कदम्ब वंश के शाही घराने से सम्बन्ध रखते थे और यह लोग हिन्दू सुल्तान कदम्ब कहलाते थे तथा विजयनगर

में निवास करते थे।

(७) एक मत के अनुसार हरिहर और बुक्क कुरूवा जाति के थे और सन् १३२३ में वारंगल की पराजय के पश्चात् वह भागकर अनागोंदी चले गये और वहाँ के राजा की नौकरी कर ली। इस कथन के अनुसार उनमें से एक अनागोंदी का प्रधानमंत्री बन गया, दूसरा वहाँ का कोषाधिकारी। १३३४ में अनागोंदी के पूर्ण विध्वंस के पश्चात् मुहम्मद तुगलक, मोहम्मद मलिक को वहाँ का सूबेदार बनाकर स्वयं वापस दिल्ली चला गया। मलिक द्वारा शासन न संभाल सकने के कारण मुहम्मद तुगलक ने इन दोनों भाईयों को सत्ता सौंप दी। हरिहर प्रथम (हुक्का) को वहाँ का शासक और बुक्का प्रथम को वहाँ प्रथम सेनापति नियुक्त कर दिया, जो बाद में विजयनगर के विशाल साम्राज्य के संस्थापक व शासक बने।

(इब्नबतूता)

चतुर्थ अध्याय

विजयनगर और उसका वैभव

विजयनगर साम्राज्य (कर्नाटक) की राजधानी, विजयनगर, का विदेशी राजदूतों द्वारा लिखा गया आँखों देखा वर्णन कभी-कभी तो एक स्वप्नलोक की नगरी या परीलोक की कथा की नगरी जैसा लगता है। उसका वैभव, राज्य व्यवस्था और जन-जन की सम्पन्नता सभी अभूतपूर्व थे। उस समय के विभिन्न देशों के राजदूतों तथा यात्रियों ने विजयनगर के बारे में एक ही बात दोहरायी है कि विजयनगर उस समय का समस्त विश्व का, सबसे अधिक विशाल सम्पन्न तथा शान्ति एवं सुव्यवस्थापूर्ण नगर था।

विजयनगर (राजधानी) की स्थापना के बारे में एक बड़ी मजेदार कथा प्रचलित है कि एक बार हरिहर प्रथम और कुछ के अनुसार अनागोंदी के राजा विजयध्वज अपने शिकारी कुत्ते के साथ घूमने निकले। कुत्ता बड़ा खूँखार था, परन्तु एक स्थान पर एक खरगोश, जिसका कुत्ता पीछा कर रहा था, पलटा और कुत्ते पर झपटकर उसे काट लिया। कुत्ता चिल्लाता हुआ दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ। इस असाधारण घटना से राजा बहुत परेशान हुआ और उसने यह घटना जाकर अपने गुरु, स्वामी विद्यारण्य को बतायी। स्वामी ने जाकर उस स्थान को देखा और कहा कि एक शक्तिशाली साम्राज्य की राजधानी बनाने के लिए यह उपयुक्ततम स्थान है और फिर उसी स्थान पर राजधानी, विजयनगर का शिलान्यास किया गया।

वर्तमान हम्पी ही रामायण की किष्किंधा है, जहाँ वानर राज बाली का राज्य था तथा जो तुंगभद्रा के उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों किनारों पर स्थित था। हम्पी के पास की पहाड़ी ही मातंग पर्वत है, जहाँ शाप के कारण बाली प्रवेश नहीं कर पाता था और सुग्रीव वहाँ निष्कण्टक रहता था। हम्पी के मुख्य

मन्दिर के देवता विरूपाक्ष हैं, जो भगवान शिव का ही एक नाम है। पास ही पम्पा सरोवर के किनारे देवी पम्पा (पार्वती) ने शिव की आराधना कर उन्हें प्राप्त किया था। पम्पा, ब्रह्मा जी की मानस पुत्री थीं- (स्कंदपुराण) बाली के पश्चात् सुग्रीव और उसके पश्चात् युवराज अंगद ने यहाँ का शासन किया। अंगद के नाम पर इस राज्य का नाम "अंगदि" पड़ा, जो बाद में बिगड़कर अनागोंदी हो गया।

(१) विजयनगर बहुत सीधी खड़ी पहाड़ियों के बीच बसा हुआ नगर है। इस नगर का घेरा ६० मील है। इसकी दीवारें संपूर्ण घाटी को घेरती हुई पर्वतों तक जाती हैं। ९०,००० सैनिक इस नगर में निवास करते हैं, जो प्रत्येक समय किसी भी आक्रमण का सामना करने या दूसरे राज्यों के विरुद्ध सैनिक अभियान करने को तैयार रहते हैं। यहाँ कोई भी व्यक्ति कितनी भी पत्नियाँ रख सकता है और वह सब अपने पति के साथ सती हो जाती हैं। यहाँ का राजा, भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा है। राजा की १२,००० पत्नियाँ हैं। जिसमें से ४,००० हर समय उसके साथ पैदल चलती हैं और इनका मुख्य कार्य पाकशाला की देखरेख करना है। इतनी ही रानियाँ सजधज के साथ घोड़ों पर चलती हैं शेष पालकियों में यात्रा करती हैं। इनमें से दो-तीन हजार ऐसी हैं जिनका पति के शव के साथ सती हो जाना निश्चित होता है।

वर्ष में एक बार देवता की सवारी, रथ पर निकाली जाती है, जिसको नागरिक अपने हाथों से खींचते हैं और जो रथ से कुचलकर मर जाते हैं, वह सीधे स्वर्ग जाते हैं, ऐसी मान्यता है। वर्ष में तीन ऐसे उत्सव होते हैं, जब सभी स्त्री-पुरुष नदी या समुद्र में स्नान करके बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों को धारण करके नाचते-गाते हैं। एक उत्सव में कई दिन तक लगातार रात को दीपावली मनाई जाती है। दूसरे उत्सव में नवदिन समारोह के पश्चात् बहुत से स्तम्भ गाड़े जाते हैं, जिन पर पवित्र व्यक्ति बैठते हैं और उन पर सारी जनता के लोग संतरे, नींबू आदि सुगन्धित फल फेंकते हैं (नवरात्र या विजयदशमी)। तीसरे उत्सव में एक दूसरे पर भगवे रंग का जल फेंककर उत्सव मनाया जाता है इनमें राजा और रानी उपस्थित रहते हैं (होलिकोत्सव)। इन सभी उत्सवों में तुरही-नगाड़े आदि वाद्य बजाए जाते हैं, विभिन्न प्रकार के पवित्र गीत गाए जाते हैं तथा घेरा बनाकर विभिन्न प्रकार के नृत्य किये जाते हैं। दिन में कई बार

ठण्डे पानी से स्नान करने की प्रथा है। मदिरापान बहुत कम लोग करते हैं। (निकालो डुकांटो- पुर्तगाली पर्यटक)

(२) फारस का राजदूत अब्दुर्रज़्ज़ाक, विजयनगर राज्य में देवराय द्वितीय के शासनकाल में पहुँचा। अब्दुर्रज़्ज़ाक का वर्णन सबसे अधिक विस्तृत, ज्ञानवर्धक और सजीव है। उसके अनुसार वहाँ उसने एक मन्दिर देखा, जिसकी तुलना में उसकी दृष्टि में उस समय विश्व में कोई दूसरा पूजास्थल नहीं था। यह मन्दिर दस गज लम्बे और दस गज चौड़े तथा पाँच गज ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ था। यह चबूतरा ठोस पीतल का बना था। इस चबूतरे पर चार ऊँची चौकियाँ बनी हुई थीं और उनमें से जो सबसे ऊँची थी, उसके ऊपर मानव-कद के बराबर सोने की बनी हुई देवता की मूर्त्ति थी। मूर्त्ति की दोनों आँखें बड़े-बड़े माणिकों (लाल रंग के हीरे के बाद का कीमती रत्न) की बनी हुई थीं और आप जिधर से भी देखें ऐसा लगता था कि वह आपको घूर रही हैं। बेदनूर नगर (जो बाद में कर्नाटक राज्य के कालड़ी राजाओं की राजधानी बना) में मकान ऐसे बने थे, मानों राजाओं के महल हों और उनमें रहने वाले स्त्री-पुरुष अत्यन्त सुन्दर थे। उन महिलाओं की तुलना अप्सराओं से की जा सकती थी। बेदनूर का मन्दिर इतना ऊँचा था, जो कई मील दूर से दिखाई पड़ता था। उस मन्दिर के ही वैभव का यदि वर्णन किया जाये तो हर व्यक्ति को अतिशयोक्ति लगेगी। नगर के मध्य में दस जरीब की माप की ऐसी सुन्दर वाटिका थी, जो कि ईरान के चमन के समान सुन्दर थी। इसमें हर प्रकार के पत्ती तथा फूल वाले पौधे थे। वाटिका के मध्य में मनुष्य की ऊँचाई के बराबर एक बैठने का स्थान बना हुआ था और उसके नीलाभ पत्थर इस प्रकार से तराश कर जोड़े गये थे कि सब एक ही पत्थर से काटे हुए लगते थे। कुर्सी के मध्य में एक विशाल नीले पत्थर की इमारत थी, जिस पर तीन पंक्तियों में देवताओं की मूर्त्तियाँ बनी हुई थीं। इस इमारत का कोई भी भाग ऐसा नहीं था, जहाँ पर मूर्त्ति न बनी हो। यह इमारत तीस गज लम्बी, बीस गज चौड़ी और पचास गज ऊँची थी, जहाँ तीन चबूतरे बने हुए थे, जिन पर देवताओं की तीन बहुत सुन्दर मूर्त्तियाँ थीं। यह मूर्त्तियाँ बहुत सुन्दर थीं और इस मन्दिर में विशिष्ट पूजन के अवसर पर बड़ी-बड़ी दावतें होती थीं। गाँव के निर्धन लोग यहाँ से भोजन और धन प्राप्त करते थे।

विजयनगर में सात परकोटे थे और यह एक अन्यन्त विशाल आबादी

वाला नगर था। विजयनगर का साम्राज्य सारन द्वीप से गुलबर्गा तक और बंगाल से मालाबार तक लगभग एक हजार मील लम्बाई में फैला हुआ था। इस राज्य में खेती की अत्यन्त उपजाऊ भूमि तथा तीन सौ अच्छे बंदरगाह थे। इस राज्य की हस्तिशाला अनागोंदी में थी जहाँ छोटी पहाड़ियों के आकार के दैत्याकार एक हजार हाथी पाले जाते थे। इस साम्राज्य की सेना में ग्यारह लाख सैनिक थे। इतनी बड़ी सेना उस समय विश्व में कहीं नहीं थी। ब्राह्मणों का इस राज्य में बुद्धिमान व्यक्तियों के नाते विशेष सम्मान था। सारे विश्व में इतना वैभवशाली राज्य उस समय और कोई दूसरा नहीं था। प्रथम परकोटे के बाहर पचास गज की दूरी तक इस प्रकार के विशालकाय पत्थर गड़े हुए थे कि कोई पैदल या घुड़सवार अबाधित गति से आगे नहीं बढ़ सकता था। पहाड़ी की चोटी पर पत्थर और चूरे की मदद से गोल घेरे में किला बना हुआ है, जिसमें बड़े मजबूत द्वार बने हुए थे और प्रत्येक पर बड़ी संख्या में शक्तिशाली प्रहरी रक्षा करते थे। इन लोगों का कार्य आने वाले लोगों से कर वसूलना भी था। हर परकोटे में अलग-अलग प्रकार के बाज़ार, सैनिक पड़ाव, कर्मचारी निवास तथा अश्वशालाएँ थीं। सातवें परकोटे में उस समय एक बहुत बड़ा बाज़ार था और इसी में राजा का महल भी था। उत्तरी और दक्षिणी द्वार के बीच में लगभग दो मील का अन्तर था तथा लगभग इतना ही अन्तर पश्चिमी और पूर्वी द्वारों में था। पहले दूसरे और तीसरे परकोटे में नागरिकों के मकान, खेत और बगीचे थे। तीसरे से सातवें परकोटे तक विभिन्न वस्तुओं के अलग-अलग बाज़ार थे, जिनमें दिन के समय ग्राहकों की भारी भीड़ रहती थी। हर बाज़ार से जुड़ी हुई एक ऊँची गैलरी और आराम करने का स्थान था। बाज़ार बड़े लम्बे-चौड़े थे। इनमें फल और फूलों की दुकानें बड़ी मात्रा में थीं और यह दुकानें दोनों ओर से खुली हुई थीं। जौहरी बाज़ार में हीरे, माणिक, मोती, पन्ने खुले-आम अन्य वस्तुओं की तरह सामने सजाकर अम्बार लगाकर बेचे जाते थे। सारे नगर में छोटी-छोटी शुद्ध जल की नहरें बहुत सुन्दर, पत्थरों से काटकर बनाई गयी पालिशदार नालियों में बहती थीं।

अभिलेखागार

राजमहल की दाहिनी ओर एक बहुत बड़ा दीवानखाना या प्रधानमंत्री का कार्यालय था। इस हॉल में चालीस खम्भे थे। सामने की ओर तीस फुट लम्बी

६ फुट चौड़ी एक गैलरी थी, जिसकी ऊँचाई दो गज की थी। यहाँ विभिन्न प्रकार के दस्तावेज रखे जाते थे। ये नारियल के पत्ते पर एक लोहे की कलम से लिखे जाते थे। कोई-कोई तो लगभग दो गज लम्बे होते थे। इन पत्तों पर काली रोशनाई से कभी पत्थर और कभी लोहे की कलम से लिखा जाता था। इनके अक्षर बहुत ही सुन्दर होते थे।

दण्डनायक का न्यायालय

अनेक स्तम्भों वाले विशाल कक्ष में एक ऊँची कुर्सी पर दण्डनायक बैठते थे और वह विभिन्न अपराधों के लिए अपने दण्ड का निर्णय सुनाते थे। उपस्थित अभियोजक या फरियादी आकर साष्टांग दण्डवत करता था, फिर सीधा अपने स्थान पर खड़ा रहता था। दण्डनायक द्वारा दिए गये दण्ड को किसी को बदलने का अधिकार नहीं था। जिस समय दण्डनायक सभा में आते या जाते थे तो गदाधारी सैनिक उनके साथ चलते थे और तुरही बजाकर उनके आगमन या प्रस्थान का संकेत दिया जाता था। दण्डनायक का निवास राजमहल के ठीक पीछे था। जिस समय दण्डनायक महाराजा के पास राज्य की न्याय-व्यवस्था वार्त्ता के लिए जाते थे, तब सात रंगीन छाताधारी उनके साथ चलते थे। हर द्वार पर एक छाता छोड़ दिया जाता था और सात द्वारों का पहरा पार करने के बाद महाराजा का सभाकक्ष आता था।

टकसाल

राजमहल के बाएँ ओर टकसाल थी, जहाँ तीन प्रकार के सोने के सिक्के ढाले जाते थे। सबसे अधिक मूल्य का सिक्का वाराह था, दूसरा प्रताप था, जिसका मूल्य पहले का आधा था। तीसरा फनाम था, जो प्रताप के १०वें हिस्से के बराबर था। एक सिक्का ताँबे का भी था, जो जीतल कहलाता था। इस टकसाल में कोषाधिकारी भी रहता था जो शासकीय धन का लेन-देन करता था। कोषागार से अलग कई सुरक्षित कमरे थे, जो सोने की सिल्लियों से भरे हुए थे। बड़े से बड़े सामंत और साधारण से साधारण व्यक्ति सभी स्वर्ण आभूषण पहनते थे जिनमें रत्न जुड़े होते थे। ये आभूषण कानों के कुण्डल, गले का हार, बाजूबंद और कलाई के आभूषण तथा अँगूठियाँ होते थे।

हस्तिशाला

अनागोंदी में एक विशाल हस्तिशाला थी, जिसमें कई सहस्र हाथी थे। उनमें एक हजार के लगभग अत्यन्त विशाल और भयंकर थे। यह हाथी सेना में तथा अपराधियों को मृत्युदण्ड देने के काम आते थे। इनका रख-रखाव बड़े श्रेष्ठ प्रकार का था और इनके रहने के लिए विशालकाय भवन बने थे जिनमें कि हाथी से भी ऊँचे दरवाजे थे। लंका आदि अन्य देशों से भी यह हाथी खरीदे जाते थे और जंगलों से उनको पकड़कर लाने का एक पूरा शासकीय विभाग था।

नगरपाल

टकसाल के पास ही नगरपाल का कार्यालय था, जिसके नीचे १२,००० नगर रक्षक (पुलिस) नियुक्त थे। प्रत्येक नगर रक्षक को १२,००० फनाम दैनिक मिलते थे। सैनिकों को दिये जाने वाला धन, वेश्यालयों से प्राप्त करके दिया जाता था।

राजदूत

राजदरबार में उस समय के विशाल राज्यों के राजदूत स्थायी रूप से रहते थे और कुछ विशेष राजदूत समय-समय पर भेंट करने आते थे तथा राजा को बहुमूल्य उपहार भेंट देते थे।

उत्सव

नौ दिन का नवरात्र का उत्सव, दीपावली का उत्सव व होली का उत्सव राष्ट्रीय पर्व के रूप में सारे देश में मनाये जाते थे। राज्य में अन्य प्रकार के उत्सव भी समय-समय पर मनाए जाते थे, जिनमें राजा भी भाग लेता था और जनता को धन तथा बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्रदान करता था।

(ईरानी राजदूत- अब्दुर्रज़्ज़ाक)

(३) राजा एक बहुत सुन्दर महल में रहता है, इसके चारों ओर सामंतों के बड़े-बड़े भवन और दरबार वगैरह लगाने के विशाल कक्ष हैं। इन सबके बाहर सुन्दर बगीचे, रंगीन सुन्दर मछलियों से युक्त तालाब और फल तथा फूलों से

लदे हुए वृक्ष हैं।

नगर में चारों ओर बड़ी भीड़ दिखाई पड़ती है, जिसमें अन्य देशों से आए हुए बड़े-बड़े व्यापारी और राजदूत भी सम्मिलित रहते हैं। यहाँ हर व्यक्ति को घूमने-फिरने की पूरी स्वतन्त्रता है। चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान, यहूदी या ईसाई हो। केवल शासक ही नहीं, यहाँ के नागरिक भी सबको समान अधिकार दिये जाने के पक्षधर हैं।

राज्य के दक्षिणी क्षेत्र में एक हीरे की खान भी है, जिससे अच्छी मात्रा में बड़े-बड़े बहुमूल्य हीरे प्राप्त होते हैं। अन्य रत्न यहाँ लंका तथा बर्मा आदि देशों से आते हैं। बड़ी मात्रा में आभूषणों में इन रत्नों के प्रयोग के कारण इनकी बिक्री भी बहुत बड़ी मात्रा में होती है। यहाँ सस्ते मूल्य की जरी और कमर के वस्त्रों की बिक्री भी बहुत बड़ी मात्रा में होती है और ये मुख्य रूप से चीन से आते हैं। इन वस्त्रों में मूँगा आदि सस्ते रत्न भी जड़े जाते हैं। यहाँ ताँबा, चाँदी, केशर, सेन्दुर, गुलाबजल, अफीम, चंदन की लकड़ी, कपूर और हिरन-कस्तूरी का भी बड़ी मात्रा में उपयोग होता है। मालाबार से आने वाली काली मिर्च का उपयोग भी यहाँ के नागरिक अच्छी मात्रा में करते हैं।

यहाँ के नागरिक गोरे रंग के, छोटे कद के, लम्बे काले बालों वाले हैं। स्त्री और पुरुष सभी कपास और सिल्क के बने वस्त्र, जिन पर जरी का काम होता है, पहनते हैं। यहाँ कढ़ी हुई टोपियों और पगड़ियों का भी रिवाज है। जूते भी अच्छी किस्म के यहाँ पहने जाते हैं। बड़े लोगों द्वारा लम्बे रत्नों से जड़े हुए जरी के काम के चोगे पहनने का भी रिवाज है। उनके पीछे उनके दास लम्बी तलवारें लेकर चलते हैं। प्रमुख लोगों के साथ छाताधारी भी चलते हैं और यह छाते सिल्क के बने होते हैं। इनमें रत्न जड़े होते हैं और यह सम्मान के प्रतीक माने जाते हैं। इनका मूल्य भी बहुत अधिक होता है। महिलाएँ ५ गज की रंगीन सिल्क की और सुन्दर महीन सूती साड़ियाँ पहनती हैं। सिरों पर यह जूड़ा बाँधती हैं और गले में स्कार्फ पहनती हैं। नाक में सोने की नथ, जिसमें कोई मोती या लाल जड़ा होता है। कानों में जड़ाऊ बुन्दे और गले में सोने की बनी रत्नों की मालाएँ, बाजूबन्द आदि पहनने का रिवाज है।

राजा की बहुत सी रानियाँ हैं जो कि बड़े-बड़े सामन्तों या अन्य राजाओं की सुन्दर पुत्रियाँ हैं। राजमहल का सारा कार्य राज्य के कोने-कोने से चुनकर

लाई गयी सुन्दर महिलाओं द्वारा किया जाता है। राज्य का किसी भी महिला से उत्पन्न पहला पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी बनता है।

राजा दरबार-ए-आम में बैठकर दूर-दूर से आये अधिकारियों से मिलता है। राज्य का शासन चलवाने के लिए आदेश लिखवाता है, लोगों को पुरस्कृत करता है तथा दण्ड भी देता है। इस प्रकार के सैकड़ों नागरिक नित्य-प्रति राजा के सामने राज्य के कोने-कोने से लाकर प्रस्तुत किये जाते हैं। दण्ड पाने वालों को कोड़े की सजा दी जाती है, मृत्युदण्ड पाने वालों को हाथी के पाँवों से कुचलवा दिया जाता है और पुरस्कार पाने वालों को बड़े-बड़े पुरस्कार दिए जाते हैं। सेना में भर्ती किए जाने वाले व्यक्ति के संपूर्ण शरीर की सघन परीक्षा की जाती है। उसके माता-पिता और जन्म का विवरण भी प्राप्त किया जाता है, तब उसे भर्ती किया जाता है। सेना के भगोड़ों को बड़ी सख्त सजा दी जाती है। राजा और उसके सामन्त कितने भी विवाह कर सकते हैं, परन्तु मृत्यु होने पर अधिकांश स्त्रियों के सती होने का रिवाज है। सामंत की मृत्यु होने पर उसकी पत्नी गाजे-बाजे के साथ अपनी सम्पत्ति को अपने संबंधियों में बाँटती है और फिर सती होती है। शवदाह के पश्चात् अवशेषों को नदी में प्रवाहित करने का रिवाज है। मन्दिरों में सुन्दर कुँवारी कन्याओं को देवदासी के रूप में रखने का भी चलन है और वे देवता के सामने नृत्य और गायन करके सबका मनोरंजन करती हैं। राजा के मरने पर कुछ उसके निकट सम्बन्धी अपने को अग्नि में प्रवेश करा देते हैं, यह कृत्य बड़े सम्मान के माने जाते हैं। गाय के मांस को छोड़कर शेष सभी प्रकार के मांस खाने का रिवाज है। मदिरा का चलन केवल बड़े लोगों में है। ब्राह्मणों का जीवन बड़ा पवित्र है। ये मुख्य रूप से मन्दिरों एवं सामंतों के यहाँ पूजा कराते हैं। ये मांस-मदिरा से दूर रहते हैं और केवल एक स्त्री से विवाह करते हैं। पत्नी के मर जाने पर ब्राह्मण दूसरा विवाह नहीं करता है। इन ब्राह्मणों को बड़ी श्रद्धा के साथ देखा जाता है और सभी नागरिक इन्हें भरपूर दान देते हैं। यहाँ लिंगायत संप्रदाय के लोग भी मिलते हैं, वह भी ब्राह्मणों के समान पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं।

महिलाएँ यद्यपि बड़ी विलासिता, तड़क-भड़क और वैभव का जीवन व्यतीत करती हैं, परन्तु वे बड़ी चरित्रवान् और उच्च नैतिकतावादी होती हैं। वह पति को देवता के समान मानती हैं। शासक स्वयं में बहुत धनवान् है और उसके

कोषागार में अकूत सम्पत्ति मौजूद है। जब वह कहीं भी भ्रमण के लिये जाता है तो उसके साथ कम से कम एक हजार योद्धा साथ चलते हैं। राजा शिकार का भी शौकीन है और अपने साथ गिने-चुने योद्धा लेकर शिकार के लिए जाता है। (डुआल्टे वारवोसा- पुर्तगाली राजदूत)

(४) विजयनगर के तीन ओर दुर्गम ऊँची पहाड़ियाँ और चौथी ओर तुंगभद्रा नदी थी, इस प्रकार प्रकृति ने उसकी सुरक्षितता बढ़ा दी थी। नगर के चारों ओर एक के भीतर एक सात परकोटे थे। प्रत्येक विभाग में एक से एक भव्य और शोभनीय मन्दिर, भवन, प्रासाद और जलाशय बनाए गये थे। सभी भवनों, मन्दिरों तथा राजप्रासादों पर बड़े-बड़े स्वर्णकलश मण्डित भगवाध्वज फहराते थे। विजयनगर राज्य का अधिकृत ध्वज हिन्दू राष्ट्र का परम्परागत ध्वज, भगवाध्वज ही था।

विजयनगर के मन्दिरों में सबसे भव्य एवं विशाल श्री नृसिंह का मन्दिर था। भगवान् नृसिंह विजयनगर के शासकों के कुल देवता थे। नृसिंह का देवता के नाते चुनाव बड़ी सूझ-बूझ से किया गया था- शत्रु के लिए सिंह के समान निर्दयी और अनिवार्य पराक्रम वाला वह भी क्रूरतापूर्ण, वीभत्स और भयंकर परन्तु जिसका अंतःकरण मानवता का था। सज्जनों की रक्षा और आततायियों का क्रूरतापूर्ण विनाश, यही नृसिंह का मंतव्य था।

विजयनगर पर विजय प्राप्त कर उसके विध्वंस के समय १५६५ में बहमनी राज्य के जंगली और बर्बर मूर्तिभंजकों ने मन्दिर तथा मूर्ति को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया; तथापि अग्र देवालय की मूलभूत नृसिंह मूर्ति का जो भग्नावशेष आज दिखता है, उससे भी मूर्ति के भव्य भयंकर स्वरूप की पूरी-पूरी कल्पना की जा सकती है। (स्वातंत्र्य वीर सावरकर- भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ)

(५) विजयनगर का निर्माण

विजयनगर का निर्माण १० वर्ष में पाँच लाख मजदूर, दो लाख राज, बावन हजार बढ़ई, बहत्तर हजार लोहार, इक्यावन हजार मिस्त्री, तीन लाख पालेर मजदूरिनें, डेढ़ लाख भिश्ती, तीन लाख गाड़ियाँ, पाँच लाख बैल तथा एक लाख गाड़ीवानों की सहायता से २४ घण्टे काम करके हुआ था।

दुर्ग से चार योजन दूर टूटे हुए कम्पिलगढ़ के खण्डहर दिखाई देते थे। पूर्व में कुछ ही दूरी पर पम्पापति का क्षेत्र तथा भगवान् कालमुख विद्यासागर की समाधि के दर्शन होते थे। रात में मजदूरों द्वारा काम करने के लिए जो मशालें जलाई जाती थीं, उनकी रोशनी दौलताबाद से दिखाई देती थी। दौलताबाद का सूबेदार इस्माइलमुख दिल्ली के सुल्तान, मोहम्मद तुगलक को समझाता कि विजयनगर को बनने से पहले ही उसे नष्ट कर दिया जाय, पर सुल्तान गुजरात के मलिक तगी (तगी चमार) और हकीम जफरखान के विद्रोह के कारण बहुत परेशान था और उसे विजयनगर की ओर देखने की फुर्सत नहीं थी। तगी चमार को इस विद्रोह को बनाए रखने के लिए विजयनगर से हथियार, धन, रसद और सैनिकों की मदद बराबर जारी थी। वीर बल्लाल देव का पुत्र बल्लभदेव और वारंगल के प्रलयनायक, कृष्णाजी नायक के सम्बन्धी कपाय नायक के ७५ पांड्य नायक गुजरात में विद्रोह की सहायता के लिए स्थान-स्थान पर चौकियाँ डाले पड़े थे। तुर्क सुल्तान के लिए गुजरात में संकट पैदाकर योजनाबद्ध ढंग से विजयनगर के सूत्रधार निष्कंटक अपनी राजधानी का निर्माण कर रहे थे।

(गुणवंतराय आचार्य)

पंचम अध्याय

विजयनगर साम्राज्य के शासक

प्रथम राजवंश (१३३६-१४८५)

(अ) हरिहर प्रथम (१३३६-१३५४)

होयसल बल्लाल तृतीय के एक सामंत, संगम यादव के पाँच पुत्र थे। उसमें से सबसे बड़े हरिहर या हरियप्पा या हुक्का, हरिहर प्रथम के नाम से १३३६ में विद्यारण्य स्वामी की योजनानुसार विजयनगर के शासक बने। अपने चार भाईयों में से बुक्काराय को उन्होंने अपना युवराज तथा सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। कम्पा को उन्होंने कड़प्पा और नेल्लौर की विजय के लिए भेजा और तत्पश्चात् वहाँ का शासक बना दिया। मारप्पा ने कदम्ब राज्य को जीता और चन्द्रगुट्टी को राजधानी बनाकर अपना राज्य स्थापित किया। पाँचवें भाई युदप्पा के बारे में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

हरिहर प्रथम बड़ा शूरवीर और योग्य शासक था। उसके अन्य सभी भाई उसके ही समान शूरवीर थे। उन्होंने अपने शौर्य के बल पर मुसलमानों की दक्षिण भारत की विजय पर विराम लगा दिया। इनके गुरु और प्रथम प्रधानमंत्री माधव या माधवाचार्य, विद्यारण्य स्वामी बने। हरिहर ने एक अत्यंत शक्तिशाली सेना का निर्माण किया और उपलब्ध धन का उपयोग कर अपने राज्य की सुरक्षा के लिए कई किले भी बनवाये। इनमें बादामी का दुर्ग सबसे सुदृढ़ था। १३४० ई० तक इनका राज्य काफी बड़ा हो गया था। उनके राज्य में तुंगभद्रा की घाटी, कोंकण और मालाबार शामिल थे। १३४४ में हरिहर और बुक्क ने वारंगल के कृष्ण नायक के दक्षिण भारत से मुसलमानों को निकालने के

अभियान में साथ दिया। १३४६ में जब विरूपाक्ष बल्लाल चतुर्थ की मृत्यु हो गयी, हरिहर और बुक्का दक्षिण के एकमात्र प्रभावी नेता शेष बचे थे। १३५६ तक दोनों भाईयों ने दिल्ली के सुल्तान द्वारा अधिकृत सभी स्थानों को जीतकर विजयनगर राज्य में मिला लिया। साथ ही दक्षिण भारत के सभी छोटे-मोटे राज्यों ने स्वेच्छा से इनकी आधीनता स्वीकार कर ली तथा दक्षिण भारत के हिन्दुओं ने सहज रूप से इन्हें अपना शासक स्वीकार कर लिया। हरिहर अत्यन्त कुशल एवं व्यवहार पटु शासक था। उसके नेतृत्व में दक्षिण भारत के सभी शासकों ने मुसलमानों को अपने क्षेत्र से निकाल बाहर करने का व्रत लिया। हरिहर ने अपने जीवन में महाराजा या राजाधिराज की उपाधि ग्रहण नहीं की और वह अपने को नायक या महामण्डलेश्वर कहलाना ही पसंद करता था।

श्रृंगेरी की शारदा पीठ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हरिहर ने उसके व्यय के लिए एक स्थायी राजकीय अनुदान की व्यवस्था की। हरिहर के शासनकाल में ही होयसल बल्लाल के सभी सामंत या नायक एक के बाद एक विजयनगर की आधीनता स्वीकार करते चले गये और उसके ही समय में होयसल साम्राज्य के समस्त नायकों के राज्यों का संपूर्ण विलय विजयनगर राज्य में हो गया। बंगलौर के चारों ओर के क्षेत्र कुक्कलबाड़ के नायक ने भी १० सितम्बर, १३४२ को आधीनता स्वीकार कर ली।

ऐसी किंवदंती है कि विजयनगर के राज्य की स्थापना के पश्चात् उसे सम्पन्न बनाने के लिए विद्यारण्य स्वामी ने हम्पी की देवी भुवनेश्वरी की आराधना की और देवी ने उनसे प्रसन्न होकर समस्त राज्य में स्वर्ण की वर्षा की, जिससे कि शासन तंत्र और जनता दोनों धनवान् और सम्पन्न हो गये। सन् १३४६ तक हरिहर प्रथम ने पूर्ण प्रभाव प्राप्त कर अपनी सत्ता को मजबूत कर लिया। प्राप्त कन्नड़ लेखों के अनुसार विजयादशमी के दिन हम्पी में बिना किसी धूमधाम के उसका राजतिलक किया गया और तभी से विजयादशमी का उत्सव इस क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष बड़ी धूमधाम से मनाया जाने लगा। (पायस और नुनीज के वर्णन)

विजयनगर बड़ी तेजी से जातिच्युत व्यक्तियों, शरणार्थियों तथा मुसलमानों द्वारा प्रताड़ित हिन्दू सैनिकों की शरणस्थली बन गया। राज्य की सीमाएँ तेजी

से बढ़ने लगीं। १३४० में हरिहर ने मुहम्मद तुग़लक के महाप्रभा के उत्तर में क़ालादंगी जनपद को जीत लिया। उत्तरी सीमा सुदृढ़ करने के लिए इसी वर्ष उसने बादामी का दुर्ग बनवाया। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार १३५२ में हसनशाह ने विजयनगर पर आक्रमण कर उसका कुछ भाग जीत लिया था। हरिहर प्रथम ने हम्पी में अपने गुरु, स्वामी विद्यारण्य के सम्मान में एक अत्यन्त भव्य तथा विशाल मन्दिर बनवाया, जिसे मुसलमानों ने सन् १५६५ में ध्वस्त कर दिया।

सन् १३५४ में हरिहर प्रथम की मृत्यु हो गयी।

(ब) बुक्काराय प्रथम (१३५४-१३७७)

१३५४ में हरिहर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् युवराज बुक्का, बुक्काराय या "बुक्काराव" के नाम से, विजयनगर के अधिपति बने। बुक्का ने भी महाराजा की उपाधि धारण नहीं की और स्वयं को नायक या महामण्डलेश्वर कहलाना पसंद किया। नुनीज के अनुसार बुक्काराय प्रथम के शासनकाल में समस्त दक्षिण भारत के साथ-साथ उड़ीसा भी शामिल कर लिया गया था। इस समय तक समस्त दक्षिण भारत के हिन्दुओं में, मुसलमानों के नृशंस अत्याचारों से त्रसित होकर, यह भावना उत्पन्न हो गई थी कि मुसलमानों के अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए और दक्षिण भारत को उनके शासन से मुक्त रखने के लिए एक प्रबल शक्तिशाली संगठित हिन्दू साम्राज्य की आवश्यकता है। अतः समस्त छोटे-छोटे राज्यों ने स्वेच्छा से विजयनगर की आधीनता स्वीकार कर ली और विजयनगर एक अत्यंत शक्तिशाली, वैभवशाली एवं सार्वभौम साम्राज्य बन गया।

१३७४ में बुक्काराय ने बहमनी राज्य पर आक्रमण किया। इसमें सुल्तान मजाहिर शाह का भारी पराभव हुआ। बुक्काराय ने चीन के राजा के पास अपना शिष्टमण्डल भी भेजा था। (सावरकर- तदैव)

बुक्काराय सम्बन्धी कुछ भ्रांतियाँ

१३५६ के शिलालेख, जो पूर्वी समुद्र तट से प्राप्त हुआ, उसमें उल्लेख मिलता है कि हरिहर प्रथम की १३४३ में मृत्यु के बाद कम्पा (दूसरे नम्बर का

भाई) गद्दी पर बैठा और उसके बाद उसके पुत्र संगम द्वितीय ने राज्य किया। दोनों ने १३४३ से १३५५ तक शासन किया और कृष्णा शास्त्री के अनुसार- "मध्यवीय धातृवृत्ति" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि माधवाचार्य के भाई सायणाचार्य, संगम द्वितीय के प्रधानमंत्री थे। कुछ शिलालेखों में इन दोनों के द्वारा कुछ गाँवों तथा धन का दान विभिन्न मन्दिरों को दिए जाने की बात भी प्राप्त हुई है।

परन्तु यह सब सत्य प्रतीत नहीं होता कि बुक्काराय ने अपने भाई-भतीजे से संघर्ष करके सत्ता प्राप्त की। बुक्का को १३३६ में युवराज घोषित किया जा चुका था और वह हरिहर प्रथम का स्वाभाविक उत्तराधिकारी था। दूसरे यदि गृहकलह होती तो बहमनी का सुल्तान इसका लाभ उठाकर विजयनगर पर अवश्य आक्रमण करता और विजयनगर के कुछ भाग हथिया लेता। कम्पा कड़प्पा और नेल्लौर का शासक था तथा इसी नाते उसने और उसके पुत्र संगम ने मन्दिरों को दान दिया होगा।

मदुरा का पराभव

सन् १३७८ में महामात्य माधव ने बुक्काराय के ज्येष्ठ पुत्र, कुमार कम्पा राय या कम्पन द्वितीय को मदुरा विजय का आदेश दिया। कम्पा राय या कुमार कम्पन ने अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ गुप्त रूप से मदुरा में प्रवेश किया। कुमार कम्पन ने वहाँ के आदिवासियों को संगठित कर, उनसे विद्रोह करवा कर नवाब उलाउद्दीन सिकंदरशाह की हत्या करवा दी। चुन-चुनकर सभी मुस्लिम सेनानायक मार दिये गये और इस प्रकार मदुरा को मुसलमानों से मुक्त करा लिया गया तथा उसे विजयनगर साम्राज्य का अंग बना लिया गया। मदुरा मुक्ति के इस महान् अभियान में कुमार कम्पन की सहायता के लिए विजयनगर के सुयोग्य मंत्री और सेनानायक विठप्पा, गोपन्ना, सोमय्या, गांदारगुली मारनायक आदि थे।

मदुरा पर आक्रमण के समय मलिक काफूर ने वहाँ के पवित्र श्रीरंग जी के मन्दिर की श्री रंगनाथ की मूर्त्ति को तोड़कर फिंकवा दिया था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि मन्दिर पर आक्रमण से पूर्व ही वहाँ का पुजारी भगवान् श्रीरंगनाथ की मूर्त्ति को लेकर गायब हो गया और वह मूर्त्ति विजयनगर

साम्राज्य के महामात्य माधव के पास सुरक्षित पहुँच गयी थी। यह भी चर्चा मदुरा में चलती थी कि मदुरा के पहले सुलतान जलालुद्दीन ने उस स्वर्ण मूर्त्ति को गलवा दिया था। नवाब ग़यासुद्दीन दमग़नी ने इस विशाल एवं भव्य मंदिर को अपना निवास बनाया। वह वहाँ शराब पीता, गोमांस खाता तथा वेश्याओं का नाच करवाता था। सूबेदार ने यहाँ हजारों हिन्दू महिलाओं की लाज लूटी। वह जिस हिन्दू कन्या या महिला की सुन्दरता के बारे में सुनता, उसे पकड़वाकर अपनी रंगशाला में मँगवा लेता और उससे बलात्कार करता।

उस समय समस्त दक्षिण भारत में हिन्दू-समन्वय आन्दोलन चल रहा था। यह नारा था कि सभी हिन्दू परस्पर कंधा मिलाकर तथा कदम से कदम मिलाकर साथ खड़े रहें, तभी जीवित रह सकेंगे और तुर्कों के दावानल को तुंगभद्रा के उस पार रोककर रख सकेंगे। उस समय चारों ओर यही हवा फैली हुई थी, यही वातावरण था। दुर्गपालों ने साम्राज्य को अपने दुर्गों का दान दिया, नायकों ने भूमि दी और वीर वणिकों ने धन का त्याग किया। लोगों ने जाति-पाँति का वैमनस्य छोड़कर रायस और बैसवागा का भेद भुला दिया। जिस प्रकार देवी-देवताओं ने अपनी शक्तियों का दान कर और फिर उनका समन्वय कर सह्यवासिनी देवी की रचना की और देवगणों की शक्ति की समूह मूर्त्ति के रूप में महाकाली भवानी का अवतार हुआ, जिन्होंने असुरों का संहार किया और समाज को निर्भयता दी। इसी की स्मृति में हम महानवमी का उत्सव मनाते हैं। इसी प्रकार पांड्य संघ के स्वतंत्रचेता संघनायक, जो सदैव परस्पर लड़ते रहते थे, अब पाँच सौ वर्ष के अपने चक्रवर्ती शासन का कुल-गौरव एक ओर रखकर संगठित हो गये। सोलंकी, चेर, चोल, कर्नाटकी, सभी सामंत छोटे-बड़े राजा, दुर्गपाल, समुद्राधिपति, सारंग आदि अन्य सभी वीर अपना-अपना अभिमान, अधिकार और सर्वस्व छोड़कर स्वेच्छा से हिन्दू धर्म, संस्कृति और अस्मिता की रक्षा के लिए एक महाराज्य के अभिन्न अंग बन गये। यही इनका परम त्याग था। (गुणवंतराय आचार्य- महामात्य)

मदुरा की विजय और मुक्ति के पश्चात् एक अत्यंत भव्य समारोह में मन्दिर को वेदमन्त्रों के साथ शुद्धिकरण की शास्त्रीय विधि से शुद्ध किया गया। श्रीरंगम में श्री रंगनाथ की मूर्त्ति पुनर्स्थापित की गई और उसे भक्तों के दर्शन एवं पूजन के लिए खोल दिया गया। १३७४ में मीनाक्षी देवी की मूर्त्ति की भी

पुनर्स्थापना कर, वहाँ पर दर्शन, भजन और पूजन प्रारम्भ करा दिया गया।

संस्कृति और साहित्य का पुनरुत्थान

इस काल में दक्षिण भारत के साहित्यकारों, संगीतज्ञों, स्थापत्य-कलाविदों ज्योतिषियों आदि सभी प्रकार के विशेषज्ञों को प्रश्रय, सहयोग एवं राजकीय संरक्षण दिये जाने के कारण इन सभी विधाओं की अभूतपूर्व उन्नति हुई। वेदों एवं शास्त्रों के अध्ययन, पठन-पाठन समीक्षा एवं संहिता लेखन का कार्य, जिसका मुस्लिम शासन में एक प्रकार से अन्त हो गया था, का पुनः प्रारम्भ होकर भारतीय संस्कृति की आभा नवोदित सूर्य के समान चारों ओर फैलने लगी। जगद्गुरु शंकराचार्य, विद्यातीर्थ मुनि के तीनों शिष्यों- मायण, सायण और भोगनाथ ने स्वयं तथा उनके मार्गदर्शन में उनके अनेक विद्वान् शिष्यों ने वैदिक साहित्य और ज्ञान के उन्नयन में विशेष योगदान दिया।

एक भ्रांतिपूर्ण एवं असत्य वर्णन

ईरानी राजदूत फरिश्ता ने बहमनी राज्य के शासक मोहम्मद शाह के विजयनगर पर आक्रमण और बुक्क राय की कई वर्ष तक बार-बार पराजय तथा पलायन का वर्णन किया है। परन्तु इस वर्णन से अन्य कोई भी इतिहासकार सहमत नहीं है और वे उसे हिन्दू विरोधी व मुस्लिमों के प्रति पक्षपातपूर्ण, असत्य एवं भ्रामक मानते हैं।

फरिश्ता के अनुसार उक्त कथानक का वर्णन निम्न प्रकार है-

वसंत ऋतु की एक शाम को मोहम्मद शाह अपने शाही बगीचे में बैठा कुछ संगीतकारों के द्वारा अमीर खुसरो की बादशाहों, उत्सवों तथा संगीत की प्रशंसा में बनाई गई कविताएँ सुन रहा था। सुल्तान यह कविताएँ सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने मलिक सईफ उर्फ दीन ग़ोरी को उन तीन सौ संगीतकारों को पुरस्कारस्वरूप एक बहुत बड़ी धनराशि की हुंडी देने को कहा, जिसका भुगतान विजयनगर के शासक को करना था। मलिक ने सोचा कि सुल्तान शराब के नशे में है और मजाक में ऐसा कह रहा है। पर दूसरे दिन जब सुल्तान को इसका पता चला तो उसने मलिक को बहुत डाँटा और हुण्डी फौरन भेजने का आदेश दिया। मलिक ने हुण्डी पर धनराशि भरकर तथा शाही मोहर

लगाकर उसे एक द्रुतगामी घुड़सवार के हाथ विजयनगर भेज दिया।

बुक्का राय ने एक स्वतन्त्र सार्वभौम शासक होने के कारण इसे अपना घोर अपमान समझा। उसने दूत को गधे की पीठ पर बिठाकर सारे शहर में घुमाने का आदेश दिया और इस प्रकार उसने अपने अपमान का बदला लिया। इतना ही नहीं बुक्काराय ने एक लाख पैदल, तीन हजार हाथी और तीस हजार घुड़सवार सेना के साथ ऊदनी दुर्ग के पास खुले मैदान में पड़ाव डाला और वहाँ से छोटी-छोटी टुकड़ियाँ आसपास के मुस्लिम क्षेत्रों को नष्ट करने के लिए भेजीं।

वर्षा होने पर भी बुक्काराय ने अपनी सेनाओं के साथ मुद्कल (जो कि रायचूर दोआब में स्थित था।) के महत्त्वपूर्ण नगर की ओर कूच किया। इस क्षेत्र के लिए हिन्दू और मुसलमानों में सदा संघर्ष होते रहते थे। मुद्कल का पतन हुआ और वहाँ के सारे मुसलमान पुरुष, स्त्री और बच्चे मौत के घाट उतार दिये गये। इस हत्याकाण्ड का समाचार पहुँचाने वाले व्यक्ति को मोहम्मद शाह ने तुरन्त कत्ल कर देने का आदेश दिया। उसने क्रोध से काँपते हुए कहा- "मैं ऐसे नालायक की शक्ल नहीं देख सकता, जो मेरे धर्म के इतने बहादुर नागरिकों की हत्या होने के बाद भी खुद जिन्दा रहा।"

फरिश्ता के वर्णन के अनुसार मोहम्मद शाह ने १४ जनवरी १३६६ को विजयनगर को ध्वस्त करने के लिए कूच किया। शाह ने अपने १,००० चुने हुए घुड़सवारों के साथ तुंगभद्रा नदी पार कर बुक्काराय के शिविर पर भयंकर आक्रमण किया। उस रात्रि को भयंकर तूफान चल रहा था तथा वर्षा हो रही थी। बुक्काराय इस अचानक हमले से घबरा गया और उसने अपना सारा बहुमूल्य खजाना तथा साजो-सामान वियजनगर रवाना कर दिया। बुक्का के सैनिक ऊदनी के दुर्ग में शरण लेने के लिए भागे। मोहम्मद के सैनिकों ने सत्तर हजार पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का वध कर दिया। यह विजयनगर पर पहला मुस्लिम आक्रमण था। मोहम्मद ने बुक्का का पीछा किया। ऊदनी दुर्ग के बाहर काली मिट्टी के मैदान में मोहम्मद की, बुक्का की विशाल सेना से २३ जुलाई, १३६६ को मुठभेड़ हुई। फरिश्ता के अनुसार बुक्काराय असावधान था और शराब के नशे में धुत वेश्याओं का नाच देख रहा था, इसी समय मोहम्मद ने अचानक उसके शिविर पर आक्रमण किया। मोहम्मद ने नई सेना और ३,०००

घुड़सवारों के साथ आक्रमण किया। सेनानायक खान मोहम्मद के नेतृत्व में यह आक्रमण इतना भयानक और तेज था कि विजयनगर की तोपों को चलने का अवसर ही प्राप्त नहीं हो सका और हिन्दू सैनिक तलवारें तथा कटारें लेकर ही भिड़ गये। अचानक खान मोहम्मद का हाथी बिगड़ गया और हिन्दू सेना को रौंदता हुआ उसमें सीधा घुसता चला गया। खान मोहम्मद भी ५०० घुड़सवारों के साथ उसके पीछे-पीछे शत्रु सेना में धँस पड़ा। विजयनगर के सेनापति हजमुलराय को सांघातिक चोट लगी और वह भाग खड़ा हुआ। इससे हिन्दू सेना के पैर उखड़ गये और वह भी भाग चली। हजारों की संख्या में हिन्दू पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्या बिना किसी को छोड़े हुए कर दी गयी। इस आक्रमण में २०,००० सैनिक मारे गये। बुक्काराय अपने साथियों के साथ तीन माह तक अपनी जान बचाए पर्वतों और जंगलों में छिपता फिरा और मोहम्मद उसका पीछा करता रहा।

अन्त में बुक्काराय ने विजयनगर के दुर्ग में जाकर शरण ली। मोहम्मद विजय की आशा में एक माह तक विजयनगर दुर्ग का घेरा डाले पड़ा रहा और जो भी हिन्दू मिला, उसे कत्ल कर दिया गया।

बुक्काराय ने सन्धि की पेशकश की, पर मोहम्मद ने उसे ठुकरा दिया। कत्ल-ए-आम को रुकवाने के लिए मोहम्मद के एक निजी सलाहकार ने उससे कहा कि आपने तो केवल एक लाख हिन्दुओं का वध करने की कसम खाई थी और पूरी हिन्दू जाति को मिटा देने की कसम नहीं खाई थी। इस पर मोहम्मद ने कहा कि यद्यपि लगभग दो लाख हिन्दुओं का वध किया जा चुका है, परन्तु यदि राय नहीं झुकता है और उसके संगीतकारों का सम्मान नहीं करता, तब तक वह वापस नहीं लौटेगा। इस पर उसे बुक्काराय की ओर से बहुत बड़ी धनराशि दिलायी गयी और फिर वह सन्तुष्ट होकर अपनी सेना के साथ गुलबर्गा वापस लौट गया। (राबर्ट सीवेल- ए फारगॉटेन एम्पायर)

(स) हरिहर द्वितीय (१३७९-१४०६)

बुक्काराय प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हरिहर द्वितीय गद्दी पर बैठा। हरिहर द्वितीय ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। माधवाचार्य के भाई सायण या सायणाचार्य उसके प्रधानमंत्री बने। इनके सेनापति मुद्दा बने।

हरिहर द्वितीय ने राज्य की व्यवस्था को अत्यन्त सुदृढ़ किया तथा मन्दिरों को बहुत बड़ी-बड़ी धनराशियाँ अनुदान में दीं। दूसरा सेनापति इरुगा था।

हरिहर ने गोवा से मुसलमानों को निकाल बाहर किया और वहाँ पर बचन्ना उदैयार को राज्यपाल बना दिया। (जनरल, बाम्बे रॉयल एशियाटिक सोसायटी- पृष्ठ २२७)

हरिहर द्वितीय, भगवान् विरूपाक्ष (शिव) का उपासक था, परन्तु अपने राज्य में रहने वाले अन्य सभी धर्मावलम्बियों के प्रति अत्यन्त सहिष्णु था। ३० अगस्त, १४०४ को हरिहर द्वितीय की मृत्यु हो गयी। दो वर्ष तक किसी का राज्याभिषेक नहीं किया जा सका। इन दो वर्षों में उसका पुत्र, बुक्का द्वितीय और वीरू पन्ना शासन सम्भालते रहे। १४०६ में देवराय प्रथम, जो कि हरिहर द्वितीय का पुत्र था, का राज्याभिषेक किया गया, जो कि उस समय उदयगिरि का राज्यपाल था। ५ नवम्बर को उसका राज्याभिषेक हुआ। अपने पिता की मृत्यु के समय वह रायचूर के पास मानवी स्थान के पास बहमनी सुल्तान के साथ युद्ध कर रहा था।

(द) देवराय प्रथम (१४०६-१४२२)

देवराय प्रथम का शासनकाल गजपति राजाओं और बहमनी के सुल्तानों के साथ कुछ छोटे-मोटे युद्धों को छोड़कर शेष समय शान्तिपूर्ण रहा। सन् १४१२ में उसने जगह-जगह सड़कों के किनारे विश्रामालय तथा प्याऊ बनवाये और कुएँ खुदवाये। सड़कों के किनारे आम के वृक्ष भी बड़ी मात्रा में लगवाए। १४१६ में उसने भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर तथा अन्य मन्दिरों को सुचारु संचालन के लिए अनुदान दिये। पूरे साम्राज्य में सिंचाई साधनों की व्यवस्था की गयी। राजधानी में बगीचे बनवाये गये और वहाँ पर फौव्वारे बनवाए गये, जिससे नगर बहुत ही सुन्दर लगने लगा।

देवराय प्रथम के मंत्री लाकन्ना या लक्ष्मणमंत्री के द्वारा भगवान् वीरभद्र का एक भव्य मन्दिर मातंग पहाड़ी पर बनवाया गया। लक्ष्मण सायण की बहन का लड़का था। राजा की हत्या करने का एक षड्यन्त्र रचा गया, परन्तु मंत्री लक्ष्मण की सावधानी ने उसे असफल बना दिया। माल्यवन्त पर्वत के नीचे

भगवान् हेरम्ब (गणेश जी) का मंदिर बनवाया गया। २ अगस्त, १४२२ को देवराय प्रथम की मृत्यु हो गयी।

देवराय प्रथम के जीवन का एक कलंकित अध्याय भी है। देवराय एक प्रकार से कुछ अंशों में दुर्बल और मूर्ख शासक था। वह मुसलमानों को नीचा दिखाने के लिए छटपटाता तो अवश्य था, परन्तु मार गिराने के उसने जो उपाय अपनाये, वह पागलपन से भरे हुए थे। उसने सोचा कि जिस प्रकार मुस्लिम सुल्तानों के यहाँ उनके अधीन सेवा में हिन्दू शूरवीर पूर्ण स्वामिभक्ति के साथ लड़ा करते थे, वैसे ही वह भी मुस्लिम सैनिकों को अपनी सेना में भरकर अपना सैन्यबल बढ़ाए। तदनुसार उसने बहुत बड़ी संख्या में अपने यहाँ मुस्लिम सैनिक भर्ती कर लिये। उसकी दुर्बलता देखकर मुस्लिमों के हौसले बहुत बढ़ गये और वे देवराय की खुली अवज्ञा करने लगे। मुस्लिमों के यह कहने पर कि वे केवल अपने खुदा के सामने सिर झुकाते हैं, उसने दरबार में भी मुजरा कराना बन्द कर दिया। एक मुसलमान के सुझाने पर देवराय ने अपने सिंहासन के बगल में "कुरान" की पुस्तक रखवा दी। मुसलमान पुस्तक को सिर झुकाते थे और यह राजा का सम्मान मान लिया जाता। देवराय ने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए राजधानी में एक मस्जिद भी बनवा दी।

मुसलमानों ने सदैव उसके साथ विश्वासघात किया। बहमनी सुल्तान फिरोज ख़ान के साथ अनेक युद्धों में देवराय की हार हुई। अन्तिम युद्ध के बाद सन्धि में फिरोज ख़ान ने उसकी कन्या माँगी और उस नराधम ने अपनी लाड़ली कन्या का विवाह भी फिरोज ख़ान के साथ कर दिया। १४०६ में जब बहमनी सुल्तान विजयनगर की राजकुमारी को ब्याहने आया, तब सड़क के ६ मील तक जरी युक्त मखमल बिछाई गयी थी। (वीर सावरकर- भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ- तृतीय भाग, पृष्ठ ९५-९६)

(ई) विजयराय प्रथम (१४२२-१४२५)

देवराय प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र विजयराय प्रथम अथवा विजय बुक्का राय १४२२ में गद्दी पर बैठा। विजयराय एक साहित्यिक व्यक्ति था और उसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि राजा भोज की मृत्यु से देवी सरस्वती के जो आँसू निकले थे, वह उसने पोंछ दिये। एक ताम्रपत्र के अनुसार विजयराय

राजा भोज का अवतार था। (ए.आर.एम.ए.डं. १९१२, पैरा १०४, पृष्ठ ८९ कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़)

विजय राय के सम्बन्ध में अन्य कुछ उल्लेखनीय नहीं है। जनवरी, १४२५ में उसकी मृत्यु हो गयी।

(फ) देवराय द्वितीय (१४२५-१४४६)

देवराय द्वितीय का शासनकाल कर्नाटक साम्राज्य के वैभव और यश को चरम पर पहुँचाने वाला सिद्ध हुआ। इस वैभव का वर्णन बहुत से ऐतिहासिक अभिलेखों में दिया हुआ है। देवराय द्वितीय को प्रौढ़ देवराय या प्रताप देवराय के नाम से भी जानते हैं। इस राजा की उपाधि "गजवेनटेकर" अर्थात हाथियों का शिकार करने वाला भी था।

देवराय द्वितीय के शासनकाल में राजधानी की योजना एक आदर्श नगर के रूप में की गयी थी। चार प्रमुख द्वार, भारी वाहनों के परिचालन के लिए पक्की तथा बहुत चौड़ी सड़कें निर्माण की गयीं। वाहन-चालन-मुक्त सड़कों को सँकरा बनाया गया तथा दोनों ओर स्थान-स्थान पर चबूतरे बनाये गये थे, जहाँ पदयात्रियों के लिए फल तथा जल उपलब्ध रहते थे। यह चबूतरे काफी बड़ी माप के होते थे, चहारदीवारी से घिरे हुए। अन्दर प्रवेश के लिए एक भव्य द्वार बनाया गया था। इस प्रकार के परिसर आज भी हम्पी और चित्रदुर्ग में ध्वस्त रूप में मौजूद हैं। विरूपाक्ष मन्दिर का भी पुनर्निर्माण कर विशेष व्यवस्था की गयी। भगवान् विरूपाक्ष की रथयात्रा के लिए "रथवीथि" बनायी गयी। हेमकूट पर्वत के चारों ओर चहारदीवारी बनायी गयी और हेमकूट पर्वत को दो भागों में विभाजित किया गया। एक परिसर में विरूपाक्ष मन्दिर था, दूसरे में अन्य कई छोटे-छोटे मन्दिर।

देवराय द्वितीय के शासनकाल में कन्नड़ साहित्य, विशेष रूप से शैव धर्म के साहित्य की बहुत उन्नति हुई। तमिल और तेलुगू साहित्य का भी काफी विकास हुआ।

१४४६ में देवराय द्वितीय की मृत्यु हो गई और इसके बाद इस वंश का इतिहास उल्लेखनीय नहीं है।

(ज) मल्लिकार्जुन राय (१४४६-१४६९)

मल्लिकार्जुन राय को तलवार की तुलना में कला और साहित्य के प्रति अधिक रुचि थी। सारंगदेव की 'संगीत रत्नाकर' के समीक्षक कालीनाथ इसी राजा के दरबार की शोभा थे। कन्नड़ काव्य "मल्लिकार्जुन विजय" इसी काल में लिखा गया। श्री रंगनाथ भगवान् का मन्दिर भी इसी काल में बनाया गया।

साम्राज्य की शौर्य-दुर्बलता को देखकर बहमनी राज्य तथा उड़ीसा के शासकों ने विजयनगर की सीमाओं पर आक्रमण कर उसके क्षेत्रों को हस्तगत करना प्रारम्भ कर दिया। इससे राज्य में चारों और अराजकता उत्पन्न हो गई। इससे शाल्व नरसिंह राव, जो कि एक शूरवीर सेनानायक था, उसका प्रभाव बढ़ना प्रारम्भ हो गया। १४६९ में मल्लिकार्जुन राय की मृत्यु हो गयी।

(च) विरूपाक्ष राय (१४६९-१४८५)

मल्लिकार्जुन की मृत्यु के पश्चात् विरूपाक्षराय गद्दी पर बैठा, पर वह अपने पूर्ववर्ती से भी गया-बीता सिद्ध हुआ। राज्य की दुर्दशा और अराजकता शाल्व नरसिंहराव से सहन नहीं हो सकी और कहते हैं कि नरसिंह राव ने १४८५ में एक षड्यंत्र के द्वारा विरूपाक्ष राय की हत्या करवा दी और विजयनगर साम्राज्य की सत्ता पर अपना एकछत्र प्रभाव स्थापित कर लिया।

षष्ठम् अध्याय

द्वितीय राजवंश (१४८५-१५०५)

(अ) शाल्व नरसिंह प्रथम (१४८५-१४९५)

"शाल्वाभ्युदय' नामक काव्य में इस वंश के प्रथम शासक नरसिंह के कार्य-कलापों का विस्तृत वर्णन दिया है। नुनीज तथा अन्य कुछ इतिहासकार नरसिंह राव को विश्वासघाती मानते हैं, परन्तु अधिकांश इतिहासकार यह मानते हैं कि राज्य की रक्षा के लिए विरूपाक्ष की हत्या करवाना देशभक्तिपूर्ण कदम था।

शाल्व वंश अत्यन्त शूरवीर तथा राजभक्त परिवार था। शाल्व ममगू तथा शाल्व गूंड़ा ने मदुरा विजय में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। परन्तु जब राज्य की परिस्थिति पूर्णतया काबू के बाहर हो गयी, तब नरसिंह राव ने धीरे-धीरे शासन के सारे सूत्र अपने हाथ में ले लिये। एक शिलालेख के अनुसार उसने राज्य पर कभी शासन नहीं किया, केवल प्रशासन या राज्य व्यवस्था को अपने हाथ में लिया। उसने अपने को कभी राजा नहीं कहलवाया। हरिहर प्रथम की तरह अपने को महामण्डलेश्वर ही कहता रहा।

जिस समय नरसिंह राव ने सत्ता हाथ में ली, पूर्व में उदयगिरि तथा उसके पास का बहुत बड़ा क्षेत्र उड़ीसा नरेश ने हड़प लिया था। पांड्य नरेश भुवनायक वीर ने कांचीपुरम् पर आक्रमण कर उसे जीतने का प्रयास किया था, यद्यपि उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी। १४९६ में मृत्यु शैय्या पर पड़े इस वीर ने अपने पुत्र से प्रतिज्ञा करवायी कि वह कर्नाटक से शत्रुओं द्वारा जीते हुए क्षेत्र को वापस लेगा।

(ब) शाल्व नरसिंह द्वितीय (१४९६-१५०५)

नरसिंह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् सन् १४९६ में नरसिंह द्वितीय गद्दी पर बैठा। नरसिंह द्वितीय एक अत्यन्त कमजोर शासक था और अपने जीवन में विशेष कुछ नहीं कर सका। उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाकर तुल्व नरसिंह, जो "नरेश नायक" के नाम से भी प्रसिद्ध था, ने धीरे-धीरे अपने हाथ में शक्ति का संचय प्रारम्भ कर दिया और वह एक प्रकार से राजा के बराबर का अधिकारी बन गया। इस समय देश में अराजकता फैल गयी थी और उड़ीसा नरेश के आक्रमणों ने साम्राज्य को कठिनाई में डाल दिया था।

राजा की दुर्बलता और राज्य की दुर्दशा देखकर शाल्व नरसिंह प्रथम के समय के देशभक्त शूरवीर सेनानायक तुल्व नरसिंह, जो नरसा नायक के नाम से भी जाने जाते थे, उन्होंने धीरे-धीरे सत्ता के सूत्र अपने हाथ में ले लिये। १५०३ में तुल्व नरसिंह की मृत्यु हो गयी और उसका स्थान उसके पुत्र, भुजबल नरसिंह या इम्मादी नरसिंह ने संभाल लिया। इस समय राजा और मंत्री दोनों नरसिंह द्वितीय के नाम से जाने जाते थे। १५०५ में शाल्व नरसिंह द्वितीय की मृत्यु हो गयी और तुल्व नरसिंह द्वितीय ने विजयनगर साम्राज्य की सत्ता संभाल ली। इस प्रकार १५०५ में तीसरे राजवंश तुल्व राजवंश का उदय हुआ।

सप्तम अध्याय

तृतीय राजवंश

तुल्व राजवंश (१५०५-१५६५)

(अ) तुल्व भुजबल नरसिंह (१५०५-१५०९)

तुल्व भुजबल नरसिंह, वीर नरसिंह के नाम से भी प्रसिद्ध था। राजा दशरथ के समान तुल्व नरसा नायक की भी तीन पत्नियाँ और चार पुत्र थे। उनके नाम थे- (१) भुजबल नरसिंह (२) कृष्णदेव राय या कृष्णराय (३) अच्युत राय तथा (४) रंगराय। भुजबल नरसिंह सबसे बड़ा पुत्र था, अतः पिता की मृत्यु के पश्चात् उनका अधिकार उसी ने संभाला था। कृष्णदेवराय, द्वितीय पुत्र अत्यन्त योग्य, शूरवीर, प्रतिभाशाली तथा जनप्रिय था। राज्य को खतरे में पाकर भुजबल नरसिंह ने राज्य की सत्ता से अपने को मुक्त कर कृष्णदेव राय को विजयनगर राज्य का शासक बना दिया। कृष्णदेव राय भुजबल नरसिंह का छोटा तथा सौतेला भाई था। भुजबल ने अपनी स्थिति साम्राज्य के संरक्षक के नाते रखी। उसने अपने भाइयों की सहायता से केवल ४ वर्ष तक सत्ता संभाली।

(ब) कृष्णदेव राय (१५०९-१५२९)

कृष्णदेव राय तुल्व नरसा नायक तथा उसकी दूसरी पत्नी, नांगलदेवी का पुत्र था। कृष्णदेव राय विजयनगर साम्राज्य का सबसे शक्तिशाली और प्रतापी महाराजाधिराज था। उसका नाम भारतीय संस्कृति के प्रातःस्मरण में भी आता है। कृष्णदेव राय के राजतिलक समारोह को मनाने के लिए हम्पी के विरूपाक्ष मंदिर के परिसर में दो भव्य भवनों, एक हजार स्तम्भों वाला "महारंग मंडप" तथा विशाल ध्वज स्तम्भ "रायगोपुर" का निर्माण किया गया।

राजतिलक से छुट्टी पाते ही कृष्णदेव राय ने उड़ीसा नरेश गजपति, जो उस समय साम्राज्य का सबसे प्रखर शत्रु था, उसका दमन करने के लिए एक विशाल सेना के साथ कूच कर दिया। मार्ग में उसने उदयगिरि, कोंडाविडु तथा कोंडापल्ली को उड़ीसा से वापस ले लिया। १५१३ में उत्सव मूर्त्ति की शोभा-यात्रा के लिए उदयगिरि से बालकृष्ण की मूर्ति को लाया गया और उसे मणिमंडप में प्रस्थापित कर दिया गया। इस मणिमंडप का निर्माण गोपुर और महारंग मण्डप के बीच में किया गया।

उड़ीसा के गजपति पर अपनी शानदार विजय को मनाने के लिए कृष्णदेव राय ने साम्राज्य के निर्धन व्यक्तियों को और प्रमुख मन्दिरों को दिल खोलकर मुक्त हस्त से दान दिया। राजधानी में विट्ठल, तिरुपति में वेंकटेश्वर तथा कालहस्ति में कालहस्तेश्वर के मन्दिरों को विशेष अनुदान दिया गया। दक्षिण भारत के सभी मन्दिरों में प्रवेश के लिए 'रायगोपुर' के नाम से भव्य द्वार बनवाये गये और सभी मन्दिरों में सौ से लेकर एक हजार स्तम्भों वाले मंडप बनवाए गये। सभी मन्दिरों की मरम्मत करवायी गयी और "अंतराल" नाम के नए निर्माण की क्रिया सम्पन्न की गयी।

मुस्लिम राज्यों से युद्ध

उड़ीसा विजय के पश्चात् कृष्णदेव राय ने अपनी दृष्टि कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच में स्थित रायचूर और मुद्गल पर डाली। इन स्थानों पर बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह का अधिकार था। आदिलशाह ने साम्राज्य के जिन-जिन क्षेत्रों को हस्तगत किया था, उन सभी को कृष्णदेव राय ने पुनः वापस ले लिया। बीजापुर का सुल्तान पराजित होकर अपनी जान बचाकर भाग निकला। बहमनी राज्य को इस समय अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो गया था। कृष्णदेव राय ने बहमनी राजकुमार की सहायता कर उसे गद्दी पर बैठाया और उसके राज्य को स्थिर किया। सुल्तान ने उसकी सहायता के लिए उसे "यवनराय स्थापनाचार्य" की उपाधि से विभूषित किया। कृष्णदेव राय के शासनकाल में किसी शत्रु का विजयनगर की ओर आँख उठाकर देखने का साहस नहीं हुआ। चारों ओर पूर्ण सुख और शान्ति का साम्राज्य था। कृष्णदेव राय का शासनकाल विजयनगर शासनकाल का स्वर्णिम काल कहा जाता है। इसके शासनकाल में साहित्य, संगीत, ज्योतिष, नृत्य-नाटक कला, विज्ञान

तथा भवन-निर्माण कला, सभी ने अपने उच्चतम शिखरों को चूमा। तेलुगू कवियों का भी यह स्वर्णकाल था। इसी समय में अल्ला सिनीपेड्डना, मुकुतिमन्ना और बीरबल से समता रखने वाले प्रसिद्ध दरबारी तेनालीराम हुए। मध्व संप्रदाय के दार्शनिक व्यासराय, कृष्णदेव राय के मार्गदर्शक थे और उनके कारण ही इस समय विजयनगर साम्राज्य में वैष्णव धर्म की बहुत उन्नति हुई। राजधानी के विठ्ठल, कृष्ण, नृसिंह और हनुमान् के मन्दिरों की विशेष प्रगति हुई।

इसी समय कर्नाटक के प्रसिद्ध कवि पुरन्दरदास का आविर्भाव हुआ। वह हरिदास भक्ति आन्दोलन के प्रमुख भक्त कवि माने जाते हैं। उन्होंने विठ्ठल, कृष्ण और नृसिंह की भक्ति से परिपूर्ण जो कविताएँ लिखीं, वह कर्नाटक साहित्य की अमूल्य निधि बन गयीं। उनके यह सभी गीत संगीतमय होने के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुए। पुरन्दर दास को ऋषि नारद का अवतार माना जाता था। उनके भजन 'कृति कीर्त्तन'' नाम से प्रसिद्ध हुए। कीर्त्तन की यह कथा-शैली दक्षिण भारत में शैवों में पहले से ही प्रचलित थी। पुरन्दर दास के भक्ति कीर्त्तन में श्रोता अपनी सुध-बुध भूलकर नाचने लगते थे। बाद में इसी से कर्नाटकी संगीत का जन्म हुआ।

कृष्णदेव राय की रानी तिरुवल ने जब प्रथम पुत्र को जन्म दिया तो उस समारोह की स्मृति में भगवान् अनंतशयनम् (विष्णु) का सन् १५१८ में मन्दिर बनवाया गया। १५२४ में छह वर्षीय युवराज का राज्याभिषेक कर दिया गया। यह राज्याभिषेक समारोह छह माह तक चलते रहे। बालक युवराज समारोह की थकान और परेशानी को सहन नहीं कर सका और उसकी मृत्यु हो गयी। नुनीज के अनुसार युवराज को महाराजा के सबसे प्रिय मंत्री तिम्मा और उसके परिवार के लोगों द्वारा विष देकर मार डाला गया था। यह कथा कितनी सत्य है कहना कठिन है, क्योंकि तिम्मा के प्रति महाराजा के व्यवहार से ऐसा सिद्ध नहीं होता। कृष्णदेव राय अपने इस प्रिय पुत्र की मृत्यु के दुःख को झेल नहीं पाया और वह बीमार हो गया तथा इसी बीमारी में उसकी मृत्यु हो गयी।

कृष्णदेव राय के शासनकाल में विजयनगर साम्राज्य कृष्णा से लेकर कन्याकुमारी तक और पश्चिमी समुद्र से लेकर पूर्वी समुद्र तक विस्तृत हो गया था। राजधानी का नागलपुरा, तिम्मलपुरा और तिरुमलरायणपट्टन तक विस्तार कर दिया गया था। उदयगिरि की विजय की स्मृति में विरूपाक्ष के मंदिर में

कृष्णापुरा बसाया गया और वहाँ भगवान् कृष्ण की मूर्त्ति स्थापित की गयी। विट्ठलपुरी की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया।

(स) अच्युतराय (१५२९-१५४२)

कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात् सन् १५२९ में उनके सौतेले भाई अच्युतराय, विजयनगर साम्राज्य के शासक बने। इस समय विजयनगर साम्राज्य का वैभव अपने चरम पर था और उसकी ख्याति समस्त विश्व में कस्तूरी की गंध के समान प्रवाहमान थी। न तो विश्व के किसी देश की राजधानी विजयनगर के समान विशाल थी, न सुन्दर और न ऐश्वर्यशाली। कोई भी नागरिक दीन और दुःखी दिखायी नहीं पड़ता था। मानव धरती पर कल्पना का रामराज्य उतर आया था। अच्युतराय नरसा नायक की तीसरी पत्नी ओबाम्बा का पुत्र था। अच्युतराय साहित्य और कला का पुजारी था। वह स्वयं एक बहुत अच्छा संगीतज्ञ था। उसने अपने लिए एक विशेष वीणा का आविष्कार किया था, जिसका नाम उसने "अच्युत भूपाली वीणा' रखा था। उसने अपनी रानी वरदाम्बिका के नाम पर एक नया नगर बसाया, जिसका नाम था "बरदांजमापट्टन" और वहाँ पर भगवान् राम का एक भव्य मन्दिर बनवाया। उसके साले तिम्माराजा ने अच्युतपुरा बसाया और वहाँ पर तिरूवेंगल नाथ का मन्दिर बनवाया। यह राजधानी की उत्तर दिशा में था। इसके अतिरिक्त भी अन्य बहुत से मन्दिर, पुष्करणी तथा वाटिकाएँ राजधानी के वैभव तथा सुन्दरता को बढ़ाने के लिए बनवाई गयीं। उसने अपने न्यायालय की एक अधिकारी तिरुमलम्बा को अपनी द्वितीय रानी बनाया। यह बहुत अच्छी कवयित्री थी और इसने पहली रानी वरदाम्बिका के राजा के साथ विवाह का बहुत सुन्दर वर्णन "वरदाम्बिका परिणय" नामक काव्य में किया है।

अच्युत राय ने साम्राज्य के सभी मन्दिरों को दिल खोलकर दान दिया और उनके वैभव एवं सम्पन्नता को बढ़ाया। इन सब बातों की पुष्टि हेतु शिलालेखों पर लिखवाया। अच्युतराय के समय में बहमनी राज्य के सुल्तानों के साथ हुई कुछ छोटी-मोटी लड़ाईयों को छोड़कर कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ और उसका शासनकाल शान्तिप्रिय ही कहा जा सकता है। १५३९ में मध्व संप्रदाय के दार्शनिक विद्वान् व्यासराय की मृत्यु हो गयी और उनका स्थान तमिलनाडु के श्री वैष्णव आचार्य को मिला। यहीं से कर्नाटक में तेलुगू के साथ-साथ तमिल

भाषा और साहित्य का तालमेल प्रारम्भ हुआ।

सन् १५४२ में अच्युतराय की मृत्यु हो गयी और उसके स्थान पर उसका पुत्र वेंकटराय शासक बना। परन्तु वह भी छह माह से अधिक जीवित नहीं रह सका। तत्पश्चात् १५४२ में ही अच्युतराय के भतीजे, सदाशिवराय ने विजयनगर साम्राज्य की बागडोर संभाली।

(द) सदाशिवराय (१५४२-१५६७)

१५४२ में विजयनगर साम्राज्य के एक प्रकार से सबसे अन्तिम और दुर्बल शासक ने विजयनगर साम्राज्य की सत्ता संभाली। सदाशिव राय, अच्युतराय के भाई रंगराय का पुत्र और तुल्व नरसा का प्रपौत्र था। सदाशिवराय अत्यन्त कायर, अक्षम तथा विलासी शासक था। उसको गद्दी पर बिठाने का श्रेय अमात्य निम्म के पुत्र रामराय का था। अतः वास्तविक सत्ता रामराय के हाथ में ही रही। रामराय अपने दो भाइयों तिरूमल और वेंकटाद्रि की सहायता से शासन चलाता था। रामराय ही बाद में रामराजा के नाम से प्रसिद्ध हुआ और मुसलमानों के लिए काल और आतंक का पर्याय सिद्ध हुआ।

रामराजा का पूरा शासनकाल, बहमनी राज्य के पाँचों टुकड़ों में से किसी की मदद कर उसे जिताना, फिर पहले हारे हुए की सहायता कर जीते हुए पर आक्रमण कर उसे हराना तथा हर युद्ध में बर्बर मुस्लिमों द्वारा पूर्व में हिन्दुओं पर किये अत्याचारों का बदला उसी नृशंसता और भयानकता से लेना, इसी उखाड़-पछाड़ में बीता। ऐसा लगता है कि मुस्लिमों के अत्याचारों से त्रस्त और भयभीत हिन्दू समाज के मन से मुस्लिमों के बर्बर आतंक के भय को जड़मूल से नष्ट कर, हिन्दुओं को संगठित कर, भविष्य में उन्हें मुस्लिमों से सीधी टक्कर लेकर उनमें विजयश्री का आत्मविश्वास जगाना ही उस महापुरुष के जीवन का उद्देश्य था। यद्यपि कुछ इतिहासकारों का मानना है कि रामराजा मुस्लिमों के साथ "जैसे को तैसा" व्यवहार न करते तो विजयनगर सांम्राज्य जैसा महान् और अद्भुत हिन्दू साम्राज्य ध्वस्त नहीं होता और दक्षिण भारत में हिन्दू शक्ति यदि बढ़ती तो मुसलमानों तथा पुर्तगालियों को भारत से बाहर निकाला जा सकता था। कुछ इतिहासकारों का यह भी मत है कि यदि रामराजा उनके आपसी झगड़ों में पड़कर उनको आपस में लड़ने देते और अलग-अलग उन पर

आक्रमण कर तथा उनके राज्य को जीतकर विजयनगर राज्य में मिला लेते तो इससे हिन्दुओं का अधिक हित होता पर वीर सावरकर का मत इन सबसे भिन्न है, जो निम्न प्रकार है-

"बहमनी राज्य दुर्बल होकर पाँच स्वतंत्र राज्यों में बँट चुका था। जब-तब ये चारों पाँचों सुल्तान आपसी लड़ाई में मदद के लिए इस हिन्दू सेना की माँग किया करते, इस कारण हिन्दू सेना में सदैव मुसलमानों से श्रेष्ठ होने की भावना जागृत रहती और उनकी भुजाएँ वीरश्री से सदैव फड़कती रहतीं। इस प्रकार तत्कालीन विजयनगर की सेना और समस्त हिन्दू समाज को मुसलमानों का तनिक भी भय बाकी नहीं रहा। निजाम के प्रदेश के मुसलमानों ने हिन्दुओं पर पहले जो भीषण अत्याचार किये थे, हिन्दू सेना ने धार्मिक क्षेत्र में भी उन पर जबर्दस्त और व्यापक प्रति-अत्याचार कर उसका बदला ले लिया। न केवल मुस्लिम सेना से लड़ते समय वरन् रास्ते में आते-जाते हुए भी उस सारे प्रदेश में पहले मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये जबर्दस्ती और दुर्व्यवहार का पूरा-पूरा बदला लेते हुए उसने यथेष्ट लूट-पाट की, जैसे पहले उन्होंने जगह-जगह हिन्दू मन्दिर गिराये वैसे ही इन्होंने भी जगह-जगह मस्जिदों को तोड़ गिराया। लड़ाईयों में भी हिन्दू सेना अपने अदम्य पराक्रम से मुसलमान सेना को ध्वस्त कर डालती

इन चालीस-पचास वर्षों में मुसलमानों पर हिन्दुओं द्वारा किये गये धार्मिक प्रति अत्याचारों एवं कठोर आचरणों से उधर का सारा मुस्लिम समाज भयभीत हो उठा। अब वे हिन्दुओं से थरथर काँपने लगे। हिन्दुस्तान भर में हाय-तोबा मचाने लगे कि हिन्दू हम पर भारी अत्याचार ढाने लग गये हैं, हम लोगों के साथ अत्यन्त क्रूर व्यवहार करते हैं और हमारे धर्म की भीषण विडम्बना करने लग गये हैं।" (सावरकर- भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ, भाग- तीन, पृष्ठ- १०५)

पाँचों मुस्लिम सुल्तान आपस में युद्ध करते समय रामराजा से सदैव सहायता की याचना करते और रामराजा सदैव सहायता चाहने वाले की मदद करते। यद्यपि सभी सुल्तान यह जानते थे कि रामराजा कट्टर हिन्दू है, वह सभी मुसलमानों को विश्वासघाती और देश का शत्रु मानता है और इसी कारण वह सदैव मुसलमानों के साथ तुच्छता एवं तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करता है।

फिर भी अपने शत्रु पर विजय के लिए रामराजा की मदद लेना उनकी मजबूरी थी। उसकी सहायता के बिना उनका काम नहीं चल सकता था।

पुर्तगालियों का भारत आगमन और अत्याचार

सन् १४९८ में केरल के कालीकट बंदरगाह में सर्वप्रथम वास्कोडिगामा नामक पुर्तगाली यात्री का जहाज पहुँचा और वहाँ उन्होंने वहाँ के राजा जामोरिन से व्यापार की अनुमति प्राप्त कर वहाँ अपनी एक व्यापारिक कोठी बनाई। धीरे-धीरे अपनी स्थिति मजबूत कर उन्होंने किले बनाए, सेना बनायी और गोवा पर कब्जा करके वहाँ पर अपना केन्द्र बना लिया। पुर्तगाल भारत में पहुँचने वाला पहला, यूरोपीय देश था।

सन् १५०५ में पुर्तगाल के राजा की ओर से फ्रांसिस्को-डि-अलमीडा को गोवा का पहला वायसराय बनाया गया। १५०९ में उसकी जगह पर अलबुकर्क की नियुक्ति हुई। पुर्तगालियों की पहली झड़प वहाँ के मुसलमान व्यापारियों से ही हुई। १५१० में अलबुकर्क ने बीजापुर के सुल्तान से युद्ध में गोवा जीत लिया और इस प्रकार उसने वहाँ किला बनाकर पुर्तगालियों के शासन की नींव डाली।

गोवा में केन्द्र बनते ही पुर्तगालियों के अत्याचार, वहाँ के हिन्दुओं पर शुरू हो गये। उन्हें जबर्दस्ती ईसाई बनाने के लिए सब प्रकार के अत्याचार किये जाते। कोई भी पाप और बलात्कार ऐसा नहीं था, जो इस कार्य के लिए नहीं किया गया। १५४० में ईसाई धर्मगुरु सेण्ट-जेबियर आया। यह साक्षात् शैतान का अवतार था। उसके आदेश से सभी धनवान् व्यक्तियों को मारा-पीटा जाता, उनकी सम्पत्ति छीन ली जाती, उनके मंदिर तोड़ दिये जाते और मूर्त्तियाँ खण्डित कर दी जातीं। बाद में उन्हें ईसाई बनाने के लिए चाबुकों से मारा जाता, फिर भी यदि वह तैयार नहीं होते तो उन्हें जिन्दा जला दिया जाता। महिलाओं के साथ बलात्कार तो अत्यन्त साधारण घटना थी। ईसाई पादरियों और पुर्तगाली सैनिकों के अत्याचारों के कारण लाखों हिन्दुओं ने आत्महत्या कर ली और उससे बड़ी संख्या में कई गुना हिन्दू ईसाई बन गये।

पुर्तगालियों ने धीरे-धीरे गोवा के बाद दीव, दमन, शाक्टी, बरूई, मद्रास के पास का कुछ क्षेत्र, बंगाल का हुबली, सालई तथा पश्चिमी समुद्र तट के

लगभग सभी स्थान अपने कब्जे में कर लिये। १५४३ में गवर्नर, अफान्सो डिसूज़ा ने भटकल की रानी के राज्य पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में हजारों हिन्दू मारे गये और अन्त में रानी को आत्मसमर्पण करना पड़ा तथा उसे पुर्तगालियों को वार्षिक कर के रूप में बहुत बड़ी राशि स्वीकार करनी पड़ी। इन अत्याचारों का यदि विस्तार से वर्णन किया जाये तो एक पूरी पुस्तक तैयार हो जायेगी। वीर सावरकर ने अपनी पुस्तक, 'भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ' में इन अत्याचारों का काफी विस्तार से वर्णन किया है।

विजयनगर साम्राज्य के कृष्णदेव राय और रामराजा जैसे शक्तिशाली नरेशों के बारे में यह भी आरोप लगाया जाता है कि यदि वे केवल बहमनी राज्य के सुल्तानों के आपसी झगड़ों में उलझे न रहकर पुर्तगालियों को गोवा से उखाड़ देते तो भारत में पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों तथा अंग्रेजों का शासन कभी स्थापित नहीं हो पाता और मुसलमानों को भी भारत से निकालने में सफलता प्राप्त हो जाती।

बहमनी सुल्तान और रामराजा

सन् १५४३ में बुरहान निजामशाह ने रामराजा और गोलकुण्डा के सुल्तान जमशेद कुतुबशाह के साथ एक समझौता किया और बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह पर आक्रमण की योजना बनायी। रामराजा ने अपने भाई वेंकटाद्रि को रायचूर और दोआब पर आक्रमण करने के लिए भेजा। इससे बीजापुर का नया सुल्तान चारों ओर दुश्मनों से घिरकर परेशानी में पड़ गया। उसने बेलगाँव के सूबेदार असद खाँ को मदद के लिए बुलाया। असद खाँ द्वारा कराये गये समझौते के अनुसार बीजापुर को निजाम को शोलापुर और कल्याणी के किले देने पड़े। विजयनगर को भी रायचूर और दोआब सौंपना पड़ा। इन दोनों से निपटकर असद खाँ ने गोलकुण्डा के कुतुबशाह पर हमला कर दिया। कुतुबशाह की अपनी राजधानी में ही बुरी तरह हार हुई और वह बुरी तरह घायल हो गया।

१५४४ में निजाम ने पुनः बीजापुर पर आक्रमण किया, पर बुरी तरह पराजित हुआ। इस विजय से सुल्तान आदिलशाह का दिमाग खराब हो गया और उसने निजाम के दूतों के साथ ही दुर्व्यवहार नहीं किया बल्कि अपने

अधिकारियों के साथ भी छोटे-छोटे अपराधों के लिए अत्यन्त नृशंसतापूर्ण व्यवहार किया। इससे वह बहुत अलोकप्रिय हो गया। अवसर का लाभ उठाकर बीजापुर के नवाब इब्राहीम के भाई अब्दुल्ला ने सत्ता पलटने का षड्यन्त्र किया और भेद खुल जाने पर वह गोवा भागकर पुर्तगालियों की शरण में चला गया। बीजापुर के सुल्तान ने सालसेट और बाल्डेज नगर पुर्तगालियों को देकर उनके साथ सन्धि कर ली कि अब्दुल्ला को वह ऐसे स्थान पर भेजेंगे, जहाँ से वह बीजापुर को भविष्य में तंग न कर सके। बेलगाँव में असद खाँ द्वारा इकट्ठी की गयी सम्पत्ति का एक बड़ा भाग भी पुर्तगालियों को दिया गया। कुछ वर्षों बाद डिसूजा की जगह पर डिकास्टो गवर्नर बनकर आया और उसने अब्दुल्ला को पूरा संरक्षण देकर उसे बीजापुर को सौंपने से इन्कार कर दिया। डिकास्टो ने विजयनगर के साथ १९ सितम्बर, १५४७ को एक संधि की और उसी के बाद ६ अक्टूबर को अहमद नगर के साथ एक संधि की, इस संधि के अनुसार गोवा को घोड़ों के व्यापार के बारे में विजयनगर को एकाधिकार देना पड़ा और यह भी कि वह गोवा से बिना कर चुकाए अपना माल बाहर विदेशों को भेज सकेंगे। साथ ही यह भी शर्त थी कि यह सुविधाएँ बीजापुर को नहीं दी जावेंगी। अन्य सभी प्रकार के व्यापारों की शर्त गोवा और विजयनगर के बीच तय हुई। बीजापुर को इससे अलग कर दिया गया। निजामशाह के साथ भी गोवा की इसी प्रकार की सन्धि हुई। इन संधियों के द्वारा बीजापुर को अलग-थलग करने का प्रयास किया गया। इसके तुरन्त बाद बीजापुर ने गोवा पर आक्रमण किया और इसमें आदिलशाह का एक प्रमुख सेनापति मारा गया। १५४८ में गोवा ने रानी भटकल और बीजापुर के साथ मित्रतापूर्ण संधियाँ कर लीं।

पुर्तगालियों ने निजामशाह के साथ अब्दुल्ला को बीजापुर की गद्दी पर बिठाने के लिए कूच किया और बेलगाँव तक पहुँच गये। असद खाँ बीजापुर के सुल्तान के उपेक्षा के व्यवहार से बहुत दुःखी था, फिर भी उसने पुर्तगालियों का साथ देने से इन्कार कर दिया। बीजापुर का सुल्तान भी फरवरी १५४९ में पुर्तगालियों का सामना करने के लिए अपनी सेना लेकर बेलगाँव पहुँच गया परन्तु इसी समय दोनों सेनाएँ बिना संघर्ष के वापस लौट गयीं।

सन् १५५० में विजयनगर की सहायता से इब्राहीम, गोलकुण्डा का शासक बना। निजामशाह के द्वारा भेजे गये उपहारों को रामराजा ने स्वीकार

कर लिया, इस पर सुल्तान इब्राहीम चिढ़ गया और उसने बीजापुर में विजयनगर के दूतों का अपमान कर दिया और वे किसी प्रकार अपनी जान बचाकर वापस भागे। रामराजा ने क्रोधित होकर निजाम को इब्राहीम पर आक्रमण करने को कहा। निजाम ने उसका पालन किया और उसने कल्यान का किला जीत लिया। अहमदनगर का भी एक किला जीता। सन् १५५१ में रायचूर में राम राजा और निजाम की सेनाएँ मिलीं और उन्होंने मुदगल पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। इस प्रकार मुदगल और दोआब फिर एक बार हिन्दू साम्राज्य के अन्तर्गत आ गये। १५५३ में बुरहान की मृत्यु हो गई और निजाम तथा बीजापुर में क्षणिक मित्रता स्थापित हुई। सुल्तान इब्राहीम ने विजयनगर पर कुछ शर्तें लादनी चाहीं, जिसका परिणाम शोलापुर के युद्ध में हुआ और इब्राहीम की बुरी तरह हार हुई। परन्तु इससे भी बुरी हार इब्राहीम की अपने बागी सरदार ऐनुल मुल्क द्वारा पराजित किए जाने के कारण हुई। ऐनुल मुल्क इब्राहीम के दुर्व्यवहार से नाराज हो गया था। इब्राहीम को किसी प्रकार अपनी जान बचाकर भागना पड़ा।

अपने अपमान और पराजय का बदला, ऐनुलमुल्क से लेने के लिए इब्राहीम ने राम राजा की सहायता माँगी। राम राजा ने अपने भाई बेंकटाद्रि के सेनापतित्व में एक बड़ी सेना सुल्तान की मदद के लिए भेजी। ऐनुल मुल्क की बुरी तरह हार हुई, वह बीजापुर का राज्य छोड़कर भाग गया।

सन् १५५५ में पुर्तगालियों ने फिर एक बार अब्दुल्ला को बीजापुर की गद्दी पर बिठाने की कोशिश की। अब्दुल्ला ने उनको बहुत धन और कई स्थान देने का वायदा किया। पुर्तगालियों ने अब्दुल्ला को पोंडा का शासक बना दिया। प्रारम्भ में छोटी-छोटी झड़पें हुईं, पर बाद में १५५७ में बीजापुर ने सालसेट और बारजेट वापस लेने के लिए हमला किया तो पोंडा के निकट उसकी हार हो गयी। इसी समय सुल्तान इब्राहीम बीमार पड़ गया और इलाज से लाभ न होने पर बहुत से हकीमों को जान से मरवा दिया जिससे बाकी हकीम अपनी जान बचाकर किसी प्रकार वहाँ से भाग गये। अन्त में सुल्तान इब्राहीम की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका बड़ा बेटा अली आदिल गद्दी पर बैठा।

अली आदिल ने तुरन्त रामराजा के साथ एक नई संधि की और इसी प्रकार की संधियाँ उसने निजामशाह के साथ भी कीं। उसने विजयनगर के

साथ स्थायी संधि के लिए प्रयास किया। वह एक सौ घोड़े लेकर रामराजा के पुत्र की मृत्यु पर शोक मनाने गया और भेंट दीं। राम राजा ने उसका बड़ा स्वागत किया। राम राजा की पत्नी ने उसे अपना पुत्र मान लिया। तीन दिन बाद वह वापस गया, परन्तु नगर से बाहर निकलते ही जब रामराजा की ओर से उसे कोई सम्मान नहीं मिला तो उसने अपना अपमान समझा और नाराज होकर वापस लौट गया।

सन् १५५८ में रामराजा मद्रास के पास मैलापुर गया। वहाँ ब्राह्मणों ने उससे शिकायत की कि ईसाई, धर्म परिवर्तन के लिए जबर्दस्ती कर रहे हैं और उन्होंने हिन्दुओं के बहुत से मन्दिर गिरा दिये हैं। ब्राह्मणों की इस बात पर क्रोधित होकर वह वहाँ गया, परन्तु जब उसे पता चला कि बतायी हुई बातें सत्य नहीं हैं तो वहाँ से बिना कोई दण्ड दिए वापस चला आया।

सन् १५५८ में बीजापुर के अली आदिल ने निजामशाह को कल्यान और शोलापुर के किले वापस करने को कहा। निजामशाह के मना करने पर सुलतान आदिलशाह ने आक्रमण करने के लिए रामराजा की सहायता करने की याचना की। रामराजा ने एक बहुत बड़ी सेना मदद के लिए भेजी। भयंकर युद्ध हुआ। निजाम की बुरी तरह पराजय हुई और उसे अपमानित होना पड़ा। परन्तु इस युद्ध में राम राजा की हिन्दू सेना ने मुसलमान बस्तियों पर जो बदले की भावना से अत्याचार किए, उससे मुसलमानों की आँखें खुल गईं। हिन्दू सेना ने मुस्लिम बस्तियों को वीरान कर दिया, उनमें आग लगा दी गयी, मस्जिदें गिरा दी गयीं और हजारों लोग मौत के घाट उतार दिए गये। इसी युद्ध में हिन्दू सेना द्वारा लिये गए बदले की प्रतिक्रिया जो दक्षिण भारत के समस्त मुसलमानों में हुई, उसी ने विजय नगर साम्राज्य के विनाश के बीज बोए।

इसी सब परिस्थिति का लाभ उठाकर पुर्तगालियों ने मालाबार तट पर आक्रमण कर हिन्दू नगरों पर इसी प्रकार का व्यवहार किया। आतंक और निर्दयता की कोई सीमा नहीं रही। इसमें दो हजार हिन्दू मार दिये गए और हजारों को धर्म परिवर्तन कराकर ईसाई बना दिया गया। मालाबार वालों के समुद्री जहाज भी नष्ट कर दिये गए। इससे मालाबार में बगावत उठ खड़ी हुई। वहाँ की जनता ने संगठित होकर पुर्तगालियों पर हमला किया, इस संघर्ष में बहुत से लोग मारे गये, फिर शांति स्थापित हो गयी।

निजामशाह की हार के बाद कल्यान बीजापुर को प्राप्त हो गया। राम राजा की सेना के वापस लौटते ही हुसैनशाह और इब्राहीम कुतुबशाह ने मिलकर बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। सहायता माँगने पर रामराजा फिर एक बड़ी सेना लेकर मदद के लिए पहुँचा। बीजापुर और विजयनगर का सामना विरोधी सेनाओं से कल्यान में हुआ, पर कुतुबशाह अली आदिल से मिल गया और हुसैन को अहमदनगर वापस लौटना पड़ा। विजयनगर की सेनाएँ वापस लौटीं। यह विजयनगर की अंतिम विजय सिद्ध हुई। राम राजा ने अपनी सेना के साथ वापस लौटते हुए गोलकुण्डा से धनपुरा और पांगुल के क्षेत्र ले लिये।

रामराजा इस समय साठ समुद्री बंदरगाहों का और विजयनगर के विशाल साम्राज्य का मालिक था। उसकी सेना पाँच लाख से भी अधिक थी और उस समय इतने शक्तिशाली शासक का मुकाबला करना किसी भी अकेले स्वतन्त्र शासक के वश की बात नहीं थी।

मुस्लिम सुल्तानों की एकता

सन् १५६४ में मुसलमान सुल्तानों ने रामराजा के मुस्लिम विरोधी कृत्यों से त्रस्त होकर यह अनुभव किया कि यदि वह अलग-अलग रहे तो कभी रामराजा की बदले की भावना से निजात नहीं पा सकेंगे और यदि उन्हें मुसलमान के नाते भारत में अपने पैर जमाए रखना है तो सारे मुस्लिम सुल्तानों को संगठित होकर विजयनगर साम्राज्य का प्रतिकार करना पड़ेगा। इस भावना के अन्तर्गत बीजापुर के सुल्तान, आदिलशाह और उसके वजीर खिज्र खाँ ने इस मामले में पहल की। वह स्वयं निजामशाह और कुतुबशाह से उनकी राजधानियों में जाकर मिले। अन्त में सभी सुल्तानों ने जेहाद (धर्मयुद्ध) के नाम पर सभी प्रभावशाली मुस्लिम सेनापतियों और मुल्ला-मौलवियों को विजयनगर और रामराजा के विरुद्ध जेहाद के लिए तैयार किया। चारों ओर जेहाद का वातावरण बन गया और सभी मुसलमानों ने तन-मन-धन से विजयनगर साम्राज्य को ध्वस्त करने की तैयारी प्रारम्भ कर दी। सम्बन्ध पक्के करने के लिए निजामशाह ने अपनी बेटी चाँदबीबी का निकाह अली आदिलशाह के साथ कर दिया। २५ दिसम्बर, १५६४ को मुस्लिम सेना ने विजयनगर की ओर कूच कर दिया। इधर राम राजा भी चुप नहीं बैठा था। उसके पास भी मुस्लिम जेहाद के सारे समाचार पहुँच रहे थे। इस समय रामराजा की उम्र ७० वर्ष (कोटा के अनुसार ९६ वर्ष) की थी। परन्तु उसके मन में मुसलमानों को

कुचल डालने की दुर्दम्य आकांक्षा विद्यमान थी। वह अपनी सेना को तैयार कर स्वयं सेनापतित्व ग्रहण कर मध्य भाग में संचालन के लिए रहा और दक्षिण तथा बाएँ पार्श्व में तिरुमल्लराय और वेंकटाद्रि बन्धुओं के नेतृत्व में दो विशाल सेनाओं को सुसज्जित कर खड़ा किया। इस विशाल सेना में ६ लाख पैदल सैनिक तथा २ लाख घुड़सवार थे। मुस्लिमों के पास इसकी आधी सेना थी। दोनों पक्षों के पास काफी मात्रा में बड़ी-बड़ी तोपें थीं, जो अगली पंक्ति में चल रही थीं। शुक्रवार २ जनवरी, १५६५ को तालीकोट के निकट राक्षस भुवन नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई और घमासान युद्ध छिड़ गया। मुसलमानों में विजयनगर की सेना के प्रबल आक्रमण के कारण भगदड़ मच गयी। यह देखकर मौत का फरिश्ता बनकर सुल्तान हुसैन निज़ामशाह, राम राजा की टुकड़ी पर बेधड़क कूद पड़ा और हिन्दू सेना की उस टुकड़ी को चीरता हुआ आगे पहुँच गया। उसके इस भयंकर आक्रमण को हिन्दू सेना रोक नहीं पायी।

रामराजा की सेना में बड़ी संख्या में मुसलमान सैनिक भी सम्मिलित थे। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि रामराजा के ही एक मुस्लिम सैनिक ने उसके साथ विश्वासघात कर उसका शिरोच्छेद किया। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि घायल होकर हाथी से रामराजा एक घोड़े पर युद्ध को अधिक गति देने के लिए कूदा। परन्तु हिन्दुओं का दुर्भाग्य कि यह समझ कर कि रामराजा युद्ध में मारा गया सेना में भगदड़ मच गयी तथा शत्रुओं ने उसका सिर काट लिया। तीसरा मत यह है कि लड़ाई तेज होने पर मुसलमानों ने रामराजा की पालकी पर एक मदमस्त हाथी छोड़ा, जो कि रामराजा को धक्का देकर धरती पर गिराकर रामराजा की सेना में सैनिकों को कुचलता हुआ धँस गया। इससे भगदड़ मच गयी। रामराजा मुस्लिम सैनिकों द्वारा मारा गया। रामराजा के मारे जाते ही निजामशाह ने रक्त से सना हुआ सिर काटकर अपने भाले की नोंक पर टाँग कर ऊपर उठा दिया, इससे हिन्दू सेना का दिल दहल उठा और मुसलमानों ने अल्ला-हो-अकबर नारों के साथ हतप्रभ हिन्दू सेना के ऊपर चारों ओर से प्रबल आक्रमण कर उसे बुरी तरह काट डाला।

इस प्रकार हिन्दू कुल सूर्य, शूरवीर महाराजा रामराजा का अन्त हुआ और विजयनगर साम्राज्य का सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया।

★

अष्टम अध्याय

विजयनगर का विध्वंस और लूट

विजय के पश्चात् मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दुओं पर किए जाने वाले अत्याचारों और विध्वंस से हिन्दू पूर्व परिचित थे। अतः पराजय होते ही उस भयंकर धाँधागर्दी में राम राजा के बन्धु और सेनापति तिरुमल्ल राय रणक्षेत्र में उपस्थित राज परिवार के सदस्यों तथा अपने विश्वस्त सैनिकों की एक टुकड़ी के साथ तुरन्त विजयनगर की ओर आए और वहाँ मुस्लिमों के पहुँचने से पहले ही साढ़े पाँच सौ हाथियों पर सारी राज्य सम्पत्ति लादकर अपने साथ राजा सदाशिव राय तथा राजघराने के सभी सदस्यों को लेकर, शेष सेना और घुड़सवारों के साथ, दक्षिण दिशा की ओर पेनकोंडा दुर्ग में चले गये।

मुस्लिम सेना जब पीछा करती हुई विजयनगर में पहुँची तो वहाँ राज परिवार के पलायन का समाचार सुनकर पागल हो उठी और उसने नैतिकता और मानवता को पूर्ण तिलांजलि देकर अत्यन्त बर्बरता और नृशंसता के साथ वही सारे कृत्य किए जो ऐसे समय में सदा से मुस्लिम सुल्तान करते आये थे। ६ माह तक लूट का नग्न तांडव चलता रहा। उन्होंने सभी मन्दिरों, गोपुरों, राज प्रासादों को ध्वस्त कर धूल में मिला दिया। सभी मूर्तियाँ अपमानित कर तोड़ डाली गयीं। सारे ग्रंथागार जलाकर राख कर दिये गये। नागरिकों के घरों पर आक्रमण कर अरबों रुपए की सम्पत्ति और करोड़ों रुपए के रत्न, सोना और चाँदी लूट लिये गये। महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। पुरुषों का कत्ल-ए-आम किया गया। यह अत्याचार तीन माह तक चलता रहा। उस अमरावती तुल्य राजधानी में मुसलमानों ने जो अग्निदाह किया, अगले ६ माह तक प्रज्वलित रहा। इस प्रकार इन बर्बर मुस्लिम नर राक्षसों ने उस विश्व के परम सुन्दर दिजयनगर को विध्वंस कर वहाँ के हिन्दुओं के साथ अमानवीय अत्याचार कर हिन्दुओं के प्रति अपनी घृणा और आक्रोश को व्यक्त किया। उस

क्षेत्र के आदिवासियों (बंजारों, लम्बाडियों, कुरूबा आदि घुमन्तू जातियों) ने भी उस अराजकतामय वातावरण में, लूट में जी भरकर भाग लिया।

लूट इतनी भयंकर थी कि हर सैनिक को बहुत बड़ी मात्रा में सोना, हीरे, जवाहरात, तम्बू, घोड़े और गुलाम हाथ लगे और वह पूरी तरह मालामाल हो गया। सुल्तानों ने, जो जिसने लूटा वह उसी के पास रहने दिया और इस प्रकार उन्हें हिन्दुओं के विरुद्ध किये गये जेहाद का पुरस्कार दिया। उन्होंने केवल लूटे गये हाथी अपने अधिकार में लिये।

मुस्लिम सेनाओं के वापस जाने के बाद पूर्णतया ध्वस्त हुए इस नगर को तिरुमल्ल राय ने पुनः बसाने का प्रयत्न किया, पर वह संभव नहीं हो सका क्योंकि इतना सब कुछ खोकर जिन्दा बचे नागरिकों ने वहाँ वापस आने से इन्कार कर दिया।

डिकांटो के अनुसार इस लूट में मुर्गी के अण्डे के बराबर एक हीरा भी हाथ लगा, इसे आदिलशाह ने हड़प लिया। मुस्लिम सेना ने विजयनगर से वापस लौटते समय मार्ग में पड़ने वाले सभी हिन्दू ग्रामों में इसी तांडव को दोहराया, जिससे कि साम्राज्य का लगभग एक चौथाई भाग श्मशान में बदल गया।

विजयनगर के विध्वंस के बाद

पेनूकोंडा के दुर्ग में पहुँचकर तिरुमल्लराय ने पुनः अपनी शक्ति संचय करना प्रारम्भ किया। उसने गोवा के व्यापारियों से घोड़े मँगवाए और कहते हैं कि उनका भुगतान नहीं किया और इन व्यापारियों को राह के चोरों के भय के कारण सात माह तक विजयनगर में रुकना पड़ा।

केन्द्र के दुर्बल होते ही विजयनगर साम्राज्य के सभी नायकों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। फिर पुनः एक बार अराजकता फैल गयी। विजयनगर साम्राज्य की इस स्थिति से सारे साम्राज्य का विदेशों से होने वाला अरबों रुपए का व्यापार समाप्त हो गया और सबसे अधिक हानि गोवा के पुर्तगाली व्यापारियों को हुई, जो कि चीन, टर्की, ढाका आदि के सामान का व्यापार विजयनगर के साथ किया करते थे।

इस परिस्थिति का लाभ उठाकर ईसाई पादरियों ने गोवा के हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार प्रारम्भ कर दिये। उन्होंने उन पर भयंकर कर लगाए। धार्मिक

कृत्यों पर भी कर लगा दिया, मन्दिरों को नष्ट कर दिया और धर्म का पालन करने पर दोषी पाये जाने पर उनके साथ जुर्माना, जेल, शारीरिक यातना और जिन्दा जला देने तक की घटनाएँ पुर्तगाली पादरियों द्वारा की गयीं।

इस विजय के पश्चात् बहमनी के पाँचों टुकड़े- अहमदनगर, बीदर, बरार, गोलकुण्डा, बीजापुर आपस में फिर लड़ने लगे। पेनूकोंडा में सदाशिव राय इस समय भी पहले की तरह बन्दी जीवन बिताते रहे और तिरुमल्ल राय शासन करते रहे। १५६७ में कहते हैं कि तिरुमल्ल राय ने सदाशिव राय की हत्या कर दी और स्वयं शासक बन बैठा।

इस प्रकार विजयनगर साम्राज्य और उसके तृतीय राजवंश की सदैव के लिए समाप्ति हो गयी और हिन्दू साम्राज्य, एक जगमगाता सूर्य सदा के लिए अन्धकार के गर्त्त में विलीन हो गया।

संदर्भ ग्रन्थ

(१) Vijayanagar - Vasundhra Filliozat
(२) Never to be forgotten Empire - Suryanarain Row
(३) A forgotten Empire - Robert Sewell
(४) भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ (भाग तीन) - वीर सावरकर
(५) महामात्य- गुणवन्तराय आचार्य
(६) The Mediaeval India - विनोदचन्द्र पांडे तथा विनोदबिहारी लाल
(७) An Advanced History of India- R.C. Majumdar & H.C. Rai Chaudhari
(८) भारत महान् - आचार्य चतुरसेन
(९) A survey of Indian History- K.M. Panniker

डॉ. शिवकुमार अस्थाना

लेखक की अन्य पुस्तकें

१. हमारे राजनेता (भाग–१)
(तिलक, गोपबन्धु, सुभाष)

२. प्रातः स्मरणीय राजनेता (भाग–२)
(दादाभाई नौरोजी, मालवीय)

३. महात्मा गांधी

४. बृहत्तर भारत की सिमटती सीमाएँ

५. भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य

सम्पर्क करें –

विक्रय व्यवस्थापक
लोकहित प्रकाशन
संस्कृति भवन, राजेन्द्रनगर,
लखनऊ–२२६००४